

खंड

2

भारतीय पुनर्जागरण और राष्ट्रीय आंदोलन

इकाई 6	
औपनिवेशिक पुरालेख : भारत की व्याख्या	57
इकाई 7	
भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और रूसी साहित्य	71
इकाई 8	
भारत में यूरोपीय साहित्य और आधुनिक सांस्कृतिक आंदोलन	78
इकाई 9	
अनुवाद और धार्मिक आंदोलन	88
इकाई 10	
अनुवाद और सामाजिक-सुधार आंदोलन	98

इकाई 6 औपनिवेशिक अभिलेख अनुवाद : भारत की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

- 6.0 उद्देश्य
- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उपनिवेशवाद, अभिलेख एवं अनुवाद
 - 6.2.1 भारत का अभिलेख : विषयवस्तु के चयन की प्रकृति
 - 6.2.2 भारत का अभिलेख : भाषा एवं विषयवस्तु की व्याख्या
 - 6.2.3 अभिलेख का इस्तेमाल एवं भारतीय इतिहास का लेखन
 - 6.2.4 औपनिवेशिक अभिलेख के कार्य
- 6.3 भारत की व्याख्या : मानव जाति विज्ञान एवं लोककथाएँ
- 6.4 सारांश
- 6.5 अभ्यास के लिए प्रश्न
- 6.6 शब्दावली
- 6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- औपनिवेशिक अभिलेख का अर्थ एवं विषयवस्तु तथा उपनिवेशवाद की स्थापना से संबंध की व्याख्या कर पाएंगे;
- जान पाएंगे कि औपनिवेशिक अभिलेखों की व्याख्या किस प्रकार की गई और इसने किस प्रकार भारत को परिभाषित किया;
- यह समझ पाएंगे कि औपनिवेशिक अभिलेख अद्यतन जानकारी का संग्रह है या इतिहास लेखन के लिए सिर्फ ऐतिहासिक सूत्रों का संग्रह;
- यह जान पाएंगे कि अनुवाद ने किस हद तक औपनिवेशिक अभिलेख का निर्माण करने में मदद दी?
- यह बता पाएंगे कि किस प्रकार औपनिवेशिक अभिलेख ने स्थानीय लेखन को समाप्त करते हुए उनका स्थान लिया और भारतीय ज्ञान का अनुकूलन किया?

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम चर्चा करेंगे कि औपनिवेशिक अभिलेख क्या हैं और वे किस प्रकार अनुवाद से जुड़े हैं। कि औपनिवेशिक अभिलेख क्या हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले, आइए इस पर एक नजर डालते हैं कि अभिलेख क्या हैं? अभिलेख का तात्पर्य सूचना एवं जानकारियों के संग्रह से है। अभिलेख विभिन्न तरह के हो सकते हैं जैसे कि, अभिलेख आधिकारिक दस्तावेजों, सांस्कृतिक पुरावशेषों, चित्रकारी आदि। ये सभी भौतिक वस्तुएँ हैं। अभिलेख मौखिक सामग्री भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, लोककथाओं के गीत रिकॉर्ड किए जा सकते हैं और इन्हें अभिलेखागार में रखा जा सकता है। टेप व फिल्मों, जिन पर उन्हें संरक्षित रखा जाता है, वे इसकी सामग्रियाँ होती हैं। लेकिन विषयवस्तु मौखिक और कम निश्चित हो सकती हैं। क्योंकि मौखिक परंपरा में पाठ बदलता रहता है। आपको यह भी जानना चाहिए कि पहले मामले में संरक्षित सामग्रियाँ मूर्त रूप में भी हो सकती हैं।

आइए अब औपनिवेशिक जानकारी के प्रश्न पर आते हैं। सत्ता एवं जानकारी के बीच संबंध आज सर्वविदित है। बर्नार्ड कॉन, माशेल फूको और एडवर्ड सर्द जैसे विद्वानों के कार्यों ने इस संबंध में महत्वपूर्ण योगदान दिए। हम यह भी जानते हैं कि उपनिवेशवाद को जानकारियों के निर्माण की प्रक्रिया के द्वारा संभव एवं मजबूत बनाया गया। हालांकि, जानने की कई विशेष प्रणालियाँ हैं, जो विशेष ऐतिहासिक घटनाओं की विशेषताएँ हैं। निकोलस बी. डिवर्स ने अपनी पुस्तक *कास्ट ऑफ़ माइंड* में इस पर चर्चा की है कि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में किस प्रकार 'मानव विज्ञान ने इतिहास का स्थान' लिया। 19वीं शताब्दी के मध्य में मानव जाति विज्ञान के प्रसार से पहले भारत के बारे में जानकारी प्राथमिक तौर पर प्राचीन भारतीय विषयवस्तुओं में ही निहित थी। उपनिवेशवादियों ने भारत के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए स्थानीय गुप्तचरों पर निर्भर रहने के अतिरिक्त एशिया के बारे में अध्ययन करने वालों ने भारतीय भाषाओं की जानकारी को अपने इस काम में महत्वपूर्ण समझा। इसका नतीजा यह हुआ कि संस्कृत एवं फारसी में मौजूद भारतीय विषयवस्तुओं का अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में खूब अनुवाद हुआ। इन अनुवादों ने भारत की एक अलग छवि पेश की। इस मुद्दे पर हम इंडोलॉजी से संबंधित इकाई (इकाई 4, ब्लॉक 2) में चर्चा कर चुके हैं।

इस इकाई में औपनिवेशिक अभिलेख और जानकारी जुटाने में इसकी भूमिका पर चर्चा के दौरान हम अनुवाद के दो स्वरूपों की भूमिका को समझने की कोशिश करेंगे। पहले में भारतीय विषयवस्तुओं का अंग्रेजी में अक्षर 1: अनुवाद है, जो औपनिवेशिक अभिलेख का एक बड़ा हिस्सा है। अनुवाद का दूसरा स्वरूप मानव जाति विज्ञान, दर्शनशास्त्र एवं लोककथाओं जैसे ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों के जरिए भारत की व्याख्या की प्रक्रिया पर ध्यान देता है। अनुवाद का दूसरा स्वरूप खासकर अनुवाद से संबंधित तेजस्विनी निरंजना के उपागम के संदर्भ में उपयोगी है। वह अनुवाद को एक अलंकार, “प्रतिनिधित्व, सत्ता एवं ऐतिहासिकता के सवाल उठाने वाले स्थान” के रूप में देखती हैं। अनुवाद का इस्तेमाल दर्शनशास्त्र, इतिहास लेखन, शिक्षा, मानव जाति विज्ञान आदि से लेकर विभिन्न अनुशासनों में किया गया।

आगे के अध्यायों में हम उपनिवेशवाद, औपनिवेशिक जानकारी, अभिलेख एवं अनुवाद के बारे में एक-एक कर चर्चा करेंगे।

6.2 उपनिवेशवाद एवं अभिलेख

हम इस बात से चर्चा शुरू करेंगे कि उपनिवेशवाद क्या है? किसी अन्य क्षेत्र से एक विशेष क्षेत्र में उपनिवेश की स्थापना एवं उसे बनाए रखना उपनिवेशवाद कहलाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जहाँ साम्राज्य किसी दूरस्थ भूभाग पर कब्जा करने के बाद उस पर उपनिवेश स्थापित पर अपनी संप्रभुता का दावा करता है। इस प्रक्रिया उस उपनिवेश के भू-भाग के भीतर सामाजिक संरचना, सरकार एवं अर्थव्यवस्था में बदलाव उपनिवेशवादियों द्वारा किए जाते हैं। साम्राज्य एवं उपनिवेश, या उपनिवेशवादियों एवं स्थानीय लोगों के बीच संबंध असमान शक्ति संबंधों पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए, साम्राज्यवादी इंग्लैंड और उपनिवेशित भारत तथा दोनों के बीच संबंध असमान शक्ति संबंधों पर आधारित थे। अधिक सामान्य शब्दों में कहें तो उपनिवेशवाद को सांस्कृतिक दोहन का विशिष्ट स्वरूप भी कहा जा सकता है, जिसका विकास पिछले 400 वर्षों में यूरोप के विस्तार के साथ हुआ। यहाँ उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के बीच अंतर को समझ लेना महत्वपूर्ण है। एडवर्ड रुईद ने दोनों के बीच बेहद सारगर्भित अंतर 'साम्राज्यवाद' एक वैचारिक बल है और “उपनिवेशवाद” उस विचारधारा का व्यावहारिक रूप है।

अभिलेख के तथा उपनिवेशवाद के बीच क्या संबंध है? बेट्टी जोसेफ ने अभिलेख को “औपनिवेशिक यंत्र” करार देते हुए कहा है कि ‘*आर्काइव*’ शब्द ग्रीक भाषा के शब्द *आर्खिया* से आया है, जिसका अर्थ ‘सार्वजनिक कार्यालय’ या ‘दस्तावेजों का संग्रह’ है। प्रासासनिक एवं वैधानिक उद्देश्य के लिए कभी-कभार इस्तेमाल किए जाने वाले और लंबे समय से इस्तेमाल नहीं किए गए रिकॉर्ड एवं दस्तावेजों का संग्रह का नाम अभिलेख है। जैसा कि जोसेफ ने आगे कहा है, ‘*आर्खे*’ का तात्पर्य ग्रीक शब्द ‘*आर्चन*’ से है, जिसका अर्थ “मुख्य मजिस्ट्रेट या शशिक है, जो कानून के निर्माता एवं प्रतिनिधि के रूप में अपने निवास-स्थान का इस्तेमाल आधिकारिक दस्तावेजों के संग्रह के लिए करता है।” इस प्रकार वह बताती हैं कि व्युत्पत्ति की दृष्टि से “अभिलेख” शब्द अपने आप में “कानून,

सत्ता एवं शासन के साथ निकटता” तथा संबंधों को दर्शाता है। भारत के संदर्भ में साम्राज्य एवं औपनिवेशिक देश के बीच दूरी तथा दोनों के बीच नियमित यात्र की असंभवता को देखते हुए भारत की औपनिवेशिक सरकार संग्रह की प्रणाली पर निर्भर थी। तीन खंडों में *द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया* के लेखक जेम्स मिल ने एक पत्र में लिखा था कि भारत की सरकार का संचालन पत्रचार से हो रहा है।

जैसे-जैसे साम्राज्य ने भारत के कई हिस्सों में अपने भू-भागीय क्षेत्राधिकार का विस्तार किया, अभिलेख एकत्र करने की प्रक्रिया को भी औपचारिक स्वरूप दिया गया और इसकी संस्थापना की गई। औपनिवेशिक अभिलेख में ‘सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक विषयवस्तुएँ’ शामिल हैं, जिनके माध्यम से स्थानीय भू-भाग एवं यहाँ के लोगों को ‘ज्ञान के विषय’ के रूप में देखा गया। अब हम जानते हैं अभिलेख की प्रक्रिया से औपनिवेशिक शासन संभव हो पाया, जिसका निर्माण स्थानीय गुप्तचरों से जुटाई गई विभिन्न प्रकार की सूचनाओं से हुआ। हालाँकि, औपनिवेशिक प्राधिकार ने जानकारी जुटाने की प्रक्रिया में धीरे-धीरे स्थानीय निवासियों की भूमिका सीमित कर दी। स्थानीय लोगों से औपनिवेशिक लेखन में यह बदलाव सबसे बेहतर तरीके से उस वक्त नजर आया था जब “बुक ऑफिस” में रखे गए भारतीय विमर्श, बही खातों एवं अन्य रिकॉर्ड की जांच के लिए 1776 में पहली बार “रिकॉर्ड रखने वाले” की नियुक्ति की गई थी। इस प्रकार जानकारी के पश्चिमी मॉडल का इस्तेमाल करते हुए स्वदेशी ज्ञान का रूपांतरण और व्याख्या की गई।

इस संबंध में एन लॉरा स्टोलर के दावे पर एक नजर डालते हैं जिसमें उन्होंने “स्रोत के रूप में अभिलेख” से “विषय के रूप में अभिलेख” के ऐतिहासिक उपागम में परिवर्तन का उल्लेख किया है। स्टोलर के अनुसार, अभिलेख केवल तथ्यों एवं आंकड़ों (स्रोतों) का संग्रह नहीं है, बल्कि “जानकारी जुटाने (विषय) का स्थान है।” अभिलेखों के निर्माण की प्रणाली एवं स्वरूप विभिन्न ऐतिहासिक काल में अलग-अलग और औपनिवेशिक शासन की अनिवार्यता के अनुसार रहे हैं। इस प्रकार, 1857 के विद्रोह के बाद मानव जाति विज्ञान से संबंधित व्यापक कार्य किए गए। जैसा कि हमने पहली इकाई में भी पढ़ा कि विद्रोहियों ने औपनिवेशिक खुफिया सूचना संग्रह की कमियों को उजागर कर दिया और इस विश्वास को बढ़ाया कि एशिया के बारे में जानकारी देने वाले विद्वानों ने भारत के बारे में जो कुछ भी कहा, वह पर्याप्त नहीं था। इस प्रकार, औपनिवेशिक अभिलेखागारों में अब केवल सूचनाओं एवं जानकारियों का रिकॉर्ड ही नहीं रखा गया, बल्कि इसने उनका अनुवाद एवं उसकी व्याख्या भी शुरू कर दी और इसे एक नया स्वरूप दिया।

6.2.1 भारत का अभिलेख : विषयवस्तु के चयन की प्रकृति

अभिलेखागार के लिए किसी को भी सबसे पहले दस्तावेजों एवं विषयवस्तुओं का चयन करना पड़ता है। हालाँकि चयन की यह प्रक्रिया राजनीति से अछूती नहीं है क्योंकि सत्ता के केंद्र को सुविधा के अनुसार जानकारियों का चयन तथा उपयोग किया जाता है। इसलिए अभिलेखागार के साथ यह सवाल आता है कि क्या संग्रह किया जाए और कितना संग्रह किया जाए? मिशेल फूको ने अपनी पुस्तक *द आर्कियोलॉजी ऑफ नॉलेज* में लिखा है कि अभिलेखागार एक संस्था या किसी संस्कृति से संबंधित सभी तरह के विषयवस्तुओं का संग्रह नहीं है, बल्कि यह ‘आचार-व्यवहार’ के नियम और ‘अभिव्यक्ति की प्रणाली’ है, जो यह निर्धारित एवं नियमित करती है कि क्या कहा जाना चाहिए और क्या नहीं। फूको ने अभिलेखागार की चयनात्मक प्रकृति का भी जिक्र किया है।

इस खंड में उन विषयवस्तुओं पर चर्चा की जाएगी, जिनका औपनिवेशिक अभिलेखागार में अनुवाद, अध्ययन एवं उपयोग किया गया। इसमें यह भी बताया जाएगा कि विषयवस्तुओं के चयन की प्रकृति ने किस प्रकार भारत के बारे में जानकारी के वर्गीकरण एवं व्यवस्था को निर्धारित किया। 18वीं शताब्दी की शुरुआत से ही फारसी व संस्कृत में मौजूद भारतीय विषयवस्तुओं का अनुवाद शुरू हो गया था। हम इसे लक्ष्य संस्कृति में अनुवाद के नियमों को लेकर इवान-टूरी के विचार के संदर्भ में समझ सकते हैं, जो यह निर्धारित करता है कि किस प्रकार की विषयवस्तुओं का अनुवाद किया जाना चाहिए और किसे विशेष संस्कृति में दिल से स्वीकार किया जाएगा?

पहले आइए एशिया के बारे में जानकारी रखने वाले विद्वानों के तर्कों पर गौर करें, ताकि भारत पर कब्जा करने और उपनिवेश बनाई गई दुनिया के अनुवाद में औपनिवेशिक बौद्धिक परियोजना के सभी पहलुओं को समझा जा सके। अनवर अब्देल मलिक के अनुसार, ओरिएंटलिज्म (पौवत्यवाद या एशियाई संस्कृति, भाषा एवं लोगों के बारे

में गहन अध्ययन) ने पूरब के इतिहास को दो संदर्भों में देखा है। पहला, “ओरिएंटलिज्म अपने दावों के क्रम में इतिहास के विशेष प्राधिकार का दावा करते हुए इतिहास को कम करके आंकता है”। कहने का अर्थ है कि भारतीय इतिहास का पूर्वोन्मुखी लेखन भारत के बारे में एकमात्र इतिहास होने का दावा करता है। दूसरा, “ओरिएंटलिज्म पूरब और यहां के लोगों की ऐतिहासिक एवं गैर-ऐतिहासिक विशेषताओं का जिक्र करते हुए पूरब का इतिहास होने से इंकार करता है”; कहने का अर्थ है कि इसने कुछ आवश्यक श्रेणियों के साथ पूरब को भी प्रदर्शित किया। मलिक अनुसार, यह व्याख्या इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है कि यह इतिहास की शुरुआत की ओर संकेत करता है, लेकिन यह इस संदर्भ में ‘गैर-ऐतिहासिक’ है कि यह व्याख्या अन्य को निर्धारित करता है। एडवर्ड सईद का दावा है कि ओरिएंटलिज्म अपने आप में एक तरह के ‘काल्पनिक विमर्श’ का विस्तार करता है, जो “अपनी स्वयं की उत्पत्ति के साथ-साथ उनके बारे में भी छिपाता है, जिसकी यह व्याख्या करता है।” सईद इतिहास पढ़ने, औपनिवेशिक इतिहासों में पूर्वोन्मुखी विषयवस्तुओं की उत्पत्ति के बारे में जानने और विजित लोगों एवं शासन के बारे में पूर्वानुमान पर जोर देते हैं। उन्होंने लिखा कि जैसे ही विजित लोगों ने उपनिवेशवाद को वैधानिक बनाने वाली जानकारियाँ देनी शुरू की, उन्होंने पराजित लोगों के अतीत को समाप्त कर दिया गया।

इंडोलॉजी (भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास, संस्कृति, भाषा एवं साहित्य का अध्ययन) पर अपने अध्याय में हमने पढ़ा कि औपनिवेशिक काल के शुरुआती दौर में भारत के बारे में इतिहासकारों की तुलना में दार्शनिक रूप से प्रशिक्षित ‘पूरब के विद्वानों’ ने अधिक लिखा और उसकी एक अलग छवि पेश की। एलेक्जेंडर डफ, चार्ल्स विल्किन्स, एल्फिनस्टीन, माल्कॉम तथा मैकेंजी कुछ ऐसे ब्रिटिश लेखकों के नाम हैं जिन्होंने ब्रिटिश काल से पहले के भारत के बारे में लिखने की आवश्यकता महसूस की। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत की कानून संबंधी किताबों के अनुवाद को बढ़ावा दिया। इसके अतिरिक्त लोकप्रिय धार्मिक ग्रंथों एवं विषयवस्तुओं का भी खूब अनुवाद हुआ। इस तरह के बौद्धिक कार्यों को बढ़ावा देने के पीछे औपनिवेशिक उद्देश्य भारतीय संस्कृति के मूल तत्व पर अधिकार करना था।

नैथानिल हाल्लेड ने 1776 में *विवादार्नवासेतु* के फारसी संस्करण से *अ कोड ऑफ गेंटू लॉज* का अनुवाद किया। यह अनुवाद भारतीय न्याय व्यवस्था को बेहतर तरीके से समझने और ब्रिटिश शासन के तहत न्याय प्रशासन को स्थापित करने के उद्देश्य से किया गया था। चार्ल्स विल्किन्स ने खास तौर पर *भागवतगीता* को अनुवाद के लिए चुना। जोसुआ मासोन ने *रामायण* तथा अन्य संबंधित विषयवस्तुओं का चयन अनुवाद के लिए किया। हालाँकि, *रामायण* का ग्रिफिथ का अनुवाद इस ग्रंथ का पहला अनुवाद था। एच. एच. विल्सन ने कालिदास के *मेघदूत* के अतिरिक्त *सेलेक्ट स्पेसीमेन्स ऑफ द थियेटर ऑफ हिन्दूज* का अनुवाद किया। यह उल्लेखनीय है कि 1874 में फ्रेडरिक मैक्समूलर ने ‘सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट सीरीज’ की स्थापना की, जिसने धर्म एवं संस्कृति से संबंधित एशियाई विषयवस्तुओं के कई अनुवाद किए। जॉर्ज बगलर ने *मनुसंहिता* का एक अन्य संस्करण पेश किया और मैक्समूलर ने कुछ *उपनिषदों* का अनुवाद किया। 1889 में टी. एच. ग्रिफिथ द्वारा अनूदित ऋग्वेद के अतिरिक्त हालाँकि पूर्ववर्ती पवित्र ग्रंथों का अनुवाद दुर्लभ था। इन ग्रंथों में इस्तेमाल की गई भाषा और उसमें निहित गूढ़ दार्शनिक विचारों के कारण सभी मंत्रेच्चार आसानी से अनुवाद के योग्य नहीं थे। इस काम में चयन की प्रक्रिया भी अपनाई गई। 20वीं सदी में वेंडी डोनीगर ओ’फ्लैहर्टी ने अनुवाद के लिए ऋग्वेद के कुछ अध्यायों का ही चयन किया। इस प्रकार, कानून, वैधानिक एवं धार्मिक ग्रंथों से संबंधित प्राचीन भारतीय विषयवस्तुओं का चयन किया गया; इन्हें पश्चिम को भारत के बारे में वास्तविक जानकारी देने के साधन के रूप में देखा गया।

वेलेजली के नेतृत्व में मैसूर के तीन अलग-अलग सर्वेक्षण कराए गए। ब्रिटिश सर्वेक्षकों- कोलिन मैकेंजी, फ्रांसिस बुचानन तथा बेंजामिन हेयने को इसकी जिम्मेदारी सौंपी गई। चूँकि मैकेंजी को यह निर्देश दिया गया था कि वह अपना सर्वेक्षण कार्य केवल ‘सैन्य और या भौगोलिक सूचनाओं’ तक सीमित न रखें, इसलिए उन्होंने अपने सर्वेक्षण कार्य का विस्तार पूरे देश के बारे में आंकड़े जुटाने के लिए किया। उनकी रुचि खास तौर पर ‘धार्मिक, पारंपरिक एवं प्रतिष्ठान’ से संबंधित जानकारी जुटाने और बौद्ध एवं जैन धर्म के शुरुआती इतिहास के बारे में थी, जिसके जरिए वह दक्षिण भारत के इतिहास का पुनर्निर्माण कर सकते थे। उनके अभिलेखागार में सिक्कों, शिलालेखों के अतिरिक्त प्राचीन मकबरों एवं टीलों की चित्रकारियाँ भी शामिल थीं (डिक्स : 1993, 291)। उनका विस्तृत काम मैसूर के सर्वेक्षण में देखा जा सकता है, जो ‘द नॉदर्न परगुन्नाह ऑफ मैसूर’ के रूप में प्रकाशित हुआ और जिसमें

‘कई पुस्तकों, शिलालेखों एवं परंपराओं’ को सूचीबद्ध करने में कामयाब रहे। अपने स्वदेशी सहायकों की मदद से उन्होंने चार विभिन्न ऐतिहासिक परिवारों के बारे में जानकारी जुटाई और उनका अनुवाद किया। इसके बाद उन्होंने स्थानीय शिलालेखों में उपलब्ध कालानुक्रम की सूचना के साथ शाही परिवारों की वंशानुसूचियों के रिकॉर्ड का मिलान किया।

तेजस्विनी निरंजना के अनुसार, प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक विलियम जोन्स ने “यूरोप के समक्ष भारतीय विषयवस्तुओं” को प्रमुखता से पेश किया। उनके अनुवाद का खूब प्रचार-प्रसार हुआ, उन्हें खूब पढ़ा गया और यूरोपीय भाषाओं में उनका खूब अनुवाद हुआ। 1789 में उनके द्वारा कालिदास के नाटक *शकुंतला* के अनुवाद की यूरोप में खूब सराहना हुई। निरंजना ने भारत के प्रतिनिधित्व के बारे में जोन्स के दो दृष्टिकोणों का जिक्र किया है। एक ओर उन्होंने भारतीयों को ‘दबू’, ‘अकर्मण्य’, ‘कपटी’ और स्वतंत्रता हासिल करने में असमर्थ बताया है तो दूसरी ओर उनका विश्वास भारत के स्वर्णिम अतीत में भी है, जो मौजूदा व्यवस्था को निम्न कोटि का और भ्रष्ट बताता है। ये दो दृष्टिकोण एक-दूसरे के विरोधाभासी प्रतीत होते हैं, हालाँकि निरंजना के अनुसार ये औपनिवेशिक लेख का ‘मिथ्याभाषी आंदोलन’ तैयार करते हैं। उन्होंने एक साथ स्थानीय लोगों के स्वभाव की ‘सहजता’ एवं ‘ऐतिहासिकता’ की व्याख्या की। सहजता कहने के पीछे अर्थ यह है कि अतीत में स्वर्णिम युग था और ऐतिहासिकता से तात्पर्य यह था कि समय भारतीयों को स्वभाव से कपटी, दबू एवं अकर्मण्य समझा गया।

निरंजना ने यहाँ तक कहा कि यदि भारतीय ‘निम्न कोटि’ के हो गए तो अनुवाद के कार्यों में पूरब के जानकारों की संलग्नता को अक्सर भारतीय संस्कृति के ‘शुद्धिकरण’ के प्रयास के रूप में देखा गया। चूँकि स्थानीय लोग विश्वस्त व्याख्याकार नहीं थे, इसलिए जोन्स का मानना था कि यह यूरोपीय लोगों की जिम्मेदारी है कि वे भारतीयों के लिए भारतीय कानून एवं संस्कृति की व्याख्या उनके ‘वास्तविक’ स्वरूप में करें। इसी तरह की प्रेरणा से जोन्स से मनु के *मनुस्मृति* का अनुवाद किया, जिसका उद्देश्य हॉल्हेड की *संहिता* का स्थान लेना और इसकी गलतियों को दुरुस्त करना था।

हालाँकि भारतीय इतिहास की इस औपनिवेशिक संरचना में हमारे लिए महत्वपूर्ण अनुवाद को पेश करने का तरीका है, जिसे तेजस्विनी निरंजना ने उपनिवेशवाद के अंदर ‘नियंत्रण की रणनीति’ कहा है। इन रणनीतियों के माध्यम से अनुवाद ने पूरब के बारे में जानकारी देने के लिए विशेष तरीकों का इस्तेमाल किया और “उपनिवेश के आधिपत्य संबंधी रूपांतरण” को फिर से सुदृढ़ बनाया। निरंजना के अनुसार, अनुवाद सत्यता एवं प्रतिनिधित्व के पश्चिमी मॉडल के साथ किए गए, चूँकि वास्तविकता को ‘स्वच्छंद’ समझा गया, अतः उसे सच्चाई के रूप में व्यवस्थित, प्रस्तुत एवं पुनः पेश किया जाना एक प्रमुख प्रयोजन था। इस प्रकार, पूरब के बारे में जानकारी रखने वाले विद्वानों का भारतीय विषय वस्तुओं से जुड़ाव और उनके अनुवाद के माध्यम से भारत को जानना और उसे पुनः पेश एक सोची समझी उपनिवेशी रणनीति थी।

संग्रह के सवाल और अनुवाद पर उपर्युक्त चर्चा के बीच क्या संबंध है? आज हम जब किसी ऐसे अभिलेखागार में दाखिल होते हैं, जहाँ औपनिवेशिक रिकॉर्ड, जो राजनीतिक, प्रशासनिक, राजस्व, वाणिज्यिक एवं व्यापार, सर्वेक्षण आदि हो सकते हैं, तो हमें अपने दिमाग में यह बात रखनी चाहिए कि वे केवल सूचनाओं या आंकड़ों के संग्रह नहीं हैं। औपनिवेशिक काल के दौरान वे जानकारी के स्रोत थे। इस जानकारी के आधार पर ब्रिटिश भारत की सरकार बनी हुई थी या उसका संचालन हो रहा था। आपने यह अवश्य गौर किया होगा कि प्रत्येक सरकारी विभाग या यहाँ तक कि विश्वविद्यालय भी अपना अभिलेखागार रखता है। उसमें ऐसी सूचनाएँ रखी जाती हैं, जो भले ही वर्षों पुरानी हों, लेकिन इनका इस्तेमाल समसामयिक संदर्भ में भी किया जा सकता है। इस प्रकार, अभिलेखागार सूचना की एक ऐसी संस्था है, जिसका समसामयिक महत्व भी होता है। यह औपनिवेशिक कार्यकाल पर भी लागू होता है। करीब 200 वर्षों के दौरान औपनिवेशिक सरकार ने औपनिवेशिक अभिलेखागार का इस्तेमाल और पुनः इस्तेमाल उपनिवेशों पर शासन करने के लिए किया। इसलिए, उदाहरण के तौर पर, 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में विकसित कानूनी या राजस्व संबंधी अथवा प्रशासनिक अभिलेख 20वीं सदी में भी उतनी ही उपयोगी रहीं। हम यहाँ सवाल कर सकते हैं कि ऐसा क्यों था? ऐसा भारत पर शासन करने वाले (उपनिवेशवाद के) उस दृष्टिकोण के कारण था, जिसके कुछ प्रमुख सिद्धांत थे और वे पूरे औपनिवेशिक काल में संचालित होते रहे। इन केंद्रीय विशेषताओं के बारे में पूर्व के पैरा में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। आइए, अब अनुवाद के सवाल पर आते हैं, क्योंकि जैसा

कि हमने देखा है, अनुवाद और जिस संदर्भ में प्रक्रिया को अपनाया उसने अभिलेखागार के निर्माण एवं औपनिवेशिक ज्ञान प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

6.2.2 भारत का अभिलेख : भाषा एवं विषयवस्तु की व्याख्या

उपनिवेशवादी सत्ता ने उपनिवेश बनाए गए राष्ट्र से संबंधित विषयवस्तुओं के संग्रह की आवश्यकता महसूस की इसलिए इन राष्ट्रों के स्थानीय लोगों से मिली जानकारी को एक निश्चित रूप देने और वर्गीकृत कर उनका इस्तेमाल साम्राज्यिक हितों की पूर्ति के लिए करने को ध्यान में रखते हुए किया गया। व्यापार को नियंत्रित करने तथा ईस्ट इंडिया कंपनी की साम्राज्यिक रुचि के कारण साम्राज्य का विस्तार किलों से फैक्ट्रियों तक और फिर बंदरगाह शहरों से आसपास के भू-भाग से राजस्व वसूलने की चर्चा तक हुआ। चूंकि व्यापार के लिए विनिमय की आवश्यकता थी, इसलिए स्थानीय भाषाओं के अनुवाद ने निष्पादन की प्रक्रिया और स्थानीय शासकों से औपनिवेशिक सौदों में मध्यस्थता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बर्नार्ड कॉन ने अपने लेख 'द कमांड ऑफ लैंग्वेज एंड द लैंग्वेज ऑफ कमांड' में औपनिवेशिक शासन के विस्तार एवं समेकन में भाषा की भूमिका की व्याख्या की है। उनके अनुसार, स्थानीय लोगों पर अच्छी तरह से 'शासन' के लिए स्थानीय भाषा का इस्तेमाल आवश्यक है। फारसी, अरबी तथा संस्कृत भाषाओं को बोल पाना तथा इन्हें समझ पाना अच्छा माना जाता था। अंततः यह सामान्य रूप से माना जाता है कि वह जॉन बॉर्थविक गिलक्रिस्ट थे, जिन्होंने 'शासन की भाषा' के रूप में हिन्दुस्तानी का विकास किया।

विलियम जोन्स की एक प्रमुख चिंता स्थानीय व्याख्याकारों की अविश्वसनीयता थी, इसलिए ब्रिटिश अधिकारियों को भारतीय भाषा सीखने, अनुवाद के काम स्वयं करने या कम से कम स्थानीय लोगों के कामकाज के निरीक्षण में सक्षम बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। उन्होंने 1771 में *ग्रामर ऑफ द पर्सियन लैंग्वेज* पेश किया। इस प्रकार, ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय उप महाद्वीप के साहित्य, इतिहास एवं दर्शन को जानने वाले लोगों को बड़ी संख्या में विभिन्न प्रशासनिक कामकाज से जोड़ा। इस नवीन विजित समाज पर शासन करने के लिए प्रशासकों को परंपरागत भारतीय कानून, राजनीति, समाज एवं धर्म में विशेषज्ञता हासिल करने की आवश्यकता थी, जो उन्हें संस्कृत एवं फारसी साहित्यों तक ले गई। जैसा कि कॉन ने कहा है कि फारसी 'भारतीय राजनीति' की भाषा थी। प्लासी के युद्ध के बाद भारतीय सेना के गठन एवं उसे बनाए रखने के लिए फारसी भाषा की जानकारी आवश्यक थी। इसके अतिरिक्त, कंपनी तथा स्थानीय शासकों के बीच हुए गोपनीय समझौतों के अनुवाद का काम स्थानीय व्याख्याकारों पर छोड़ना खतरनाक समझा गया।

दूसरी ओर, संस्कृत को 'पवित्र भाषा' इसलिए दिया गया, क्योंकि भारतीयों पर बेहतर तरीके से शासन के लिए इसे समझना आवश्यक माना गया। सभी प्राचीन पुस्तकें एवं कानून से संबंधित तथा संस्कृत में लिखी थी, इसलिए संस्कृत को सीखने की और अधिक आवश्यकता महसूस की गई। इस प्रकार, वारेन हेस्टिंग्स (1772-85) के कार्यकाल में सन् 1800 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। फोर्ट विलियम कॉलेज अपने ब्रिटिश कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं में प्रशिक्षित करता था और कंपनी भारतीय वैधानिक संधियों तथा अन्य उपयोगी कार्यों और भारतीय भाषाओं के शब्दकोशों एवं व्याकरणों के अनुवाद के लिए आकर्षक भुगतान करती थी। एन. बी. हाल्लेड ने बांग्ला के पहले अंग्रेजी व्याकरण का संकलन किया। इसी तरह जे. विल्सन ने 1898 में *ग्रामर एंड डिक्शनरी ऑफ वेस्टर्न पंजाबी* लिखा। फोर्ट विलियम कॉलेज में दो तरह के लोग थे; एक जो परंपरागत भाषाओं का समर्थन करते थे और दूसरे वे जो बोलचाल की भाषा पर जोर देने वाले विलियम केरी और गिलक्रिस्ट का समर्थन करते थे। गिलक्रिस्ट 1789 में ही बातचीत का एक समुच्चय *द ओरिएंटल लिंग्विस्टिक्स* प्रकाशित कर चुके थे और केरी ने *डायलॉग्स* लिखा, जिनमें आदेश की विभिन्न परिस्थितियों में आवश्यक संवादों का संकलन था।

भारत की यूरोपीय खोज केवल इसमें रुचि रखने वाले विद्वानों के कारण संभव नहीं हो सकी, बल्कि मिशनरियों और ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रही, जैसा कि हम जानते हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में व्यापार करने आई थी और बाद में यहाँ शासन किया। 19वीं शताब्दी में हमने यूरोप के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं अन्य स्थानों पर पूरब से संबंधित भाषाओं को पाठ्यक्रम के रूप में पढ़ाए जाने का सिलसिला देखा। रोमिला थापर के शब्दों में, 'संस्कृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययन ने केवल तुलनात्मक भाषा विज्ञान को आकार नहीं दिया, बल्कि यह प्राचीन भारतीय समाज के पुनर्निर्माण का स्रोत भी बना।' संस्कृत की खोज के बाद

जोन्स ने कुछ महत्वपूर्ण शब्दों एवं व्याकरण के आधार पर संस्कृत एवं यूरोपीय भाषा के साझा उद्गम का दावा किया। हम इसे मानव जाति से संबंधित उस व्यापक सोच से जोड़कर देख सकते हैं, जिसके बारे में पहले ही चर्चा की जा चुकी है और जिसके तहत भारतीयों का क्रम निचले स्तर पर आता है। भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद की शुरुआत 1785 में हुई अनुवाद की यह परियोजना शुरू में संस्कृत में था। पूरब से संबंधित विषयवस्तुओं के बड़े पैमाने पर हुए अनुवाद एवं खोज के कारण रेमंड वाब ने इसे 'पूर्वोन्मुखी पुनर्जागरण' 'ओरिएंटल रेनसांस' कहा।

6.2.3 अभिलेख का इस्तेमाल एवं भारतीय इतिहास का लेखन

पहले के अध्यायों में हमने देखा कि अनुवाद एवं अध्ययन के लिए किस प्रकार विशेष विषयवस्तुओं एवं स्रोतों का चयन किया गया। आइए, अब इस पर ध्यान देते करते हैं कि भारतीय इतिहास के औपनिवेशिक निर्माण में किस प्रकार चयन की प्रक्रिया का इस्तेमाल किया गई। दूसरे शब्दों में, हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि क्या विषयवस्तुओं के चयन की प्रक्रिया और संग्रह ने औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा भारतीय इतिहास के लेखन में किसी तरह की भूमिका निभाई। रोमिला थापर के अनुसार, 18वीं सदी से ही भारतीय इतिहास की व्याख्या विश्व को लेकर यूरोपीय एवं खासकर ब्रिटिश इतिहासकारों के दृष्टिकोण से गहरे संबद्ध रही है, जिन्होंने इतिहास लेखन का शुरुआती आधार मुहैया कराया। औपनिवेशिक कार्यकाल की शुरुआत में ऐतिहासिक जीवनियों एवं ऐतिहासिक घटनाक्रमों पर आधारित परंपरागत इतिहास लेखन की बड़े पैमाने पर अनदेखी की गई। इस प्रकार, भारतीय अतीत की खोज औपनिवेशिक अभिलेखागार से शुरू हुई, जो पूरब एवं भारतीय उपमहाद्वीप के बारे में जानकारी रखने वालों के कार्यों से बना था। ये जानकार मुख्यतः यूरोपीय थे, जिन्होंने भारतीय भाषाओं की जानकारी हासिल की थी। हम यही देख चुके हैं कि किस प्रकार धार्मिक पाठों का बड़े पैमाने पर अनुवाद किया गया। ब्रिटिश इतिहासकारों ने हालाँकि पुराण जैसे ग्रंथों के ऐतिहासिक मूल्य को नकार दिया और इन्हें पौराणिक एवं दंतकथा समझा गया।

18वीं शताब्दी में एलेक्जेंडर डॉव और डेवी ने अनुवाद के लिए "फारसी कालानुक्रम" को चुना। इसका मुख्य उद्देश्य भारत पर ब्रिटेन की जीत से पहले राजनीतिक व्यवहार एवं पूर्ववर्ती साम्राज्यवादियों की विफलताओं को दर्शाना था। फेरिस्ता के फारसी संस्करण से अपने अनुवाद *द हिस्ट्री ऑफ हिन्दुस्तान* में डॉव ने पूरब में विद्यमान स्वेच्छाचारी शासन को पेश किया है। इसमें पूरब के शासकों को स्वेच्छाचारी बताया गया है, जो अपने कुशासन से लोगों का दमन करते हैं। "द ओरिजिन ऑफ डिस्पॉटिज्म इन हिन्दोस्तान" शीर्षक से प्रकाशित अपने अध्याय में डॉव ने दावा किया है कि किस प्रकार स्वेच्छाचारी शासन-प्रणाली अपने "दासों" की "कमियों" एवं "अवगुणों" के कारण बरकरार है। ऐसी शासन प्रणाली में "लोक नैतिकता" के लिए कोई स्थान नहीं है। लोग स्वेच्छाचारी शासन प्रणाली के इतने आदती हो गए हैं कि यदि कोई शासक भी लोक नैतिकता को दर्शाता है तो जनता इसके खिलाफ विद्रोह कर देगी। इस छवि से अलग भारत में ब्रिटेन का दखल अपेक्षा त अधिक सद्भावनापूर्ण था। भारत में मुगल शासन को विघटन के रूप में देखा गया और ब्रिटिश शासन की जिम्मेदारी इसके पुराने, मुगलकालीन शासन से पहले के गौरव को बहाल करना था। इसे "फॉर रेस्टोरिंग बंगाल टू इट्स फॉर्मर प्रॉस्पेराइटी" (बंगाल की पुरानी समृद्धि बहाल करने के लिए) योजना के एक भाग के रूप में समझाया गया है।

जेम्स मिल ने मिथकों एवं दंतकथाओं से अलग अपनी पुस्तक *ए हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया* में भारत के 'धर्मनिरपेक्ष' इतिहास को पेश किया। मिल ने अपने कार्य को भारत की परंपरागत संस्थाओं की समीक्षात्मक विवेचना के रूप में पेश किया। इतिहास के रेखीय विचार की अवधारणा उन्हें भारत की 'बर्बरता' को पेश करने में सक्षम बनाती है, जो यूरोपीय लोगों की आदिम संस्कृति एवं प्राचीन पूर्ववर्तियों के साथ इसकी समानता का द्योतक है। वास्तव में, 19वीं सदी में तुलनात्मक प्रणाली अधिक प्रभावी थी, जो कानून, धर्म, पौराणिक कथाओं आदि के संदर्भ में काम करती थी। यूरोप के 'बर्बर पूर्वजों' एवं प्राचीन सभ्यता के साथ भारतीय संस्कृति, विश्वास व परंपराओं की तुलना करते हुए भारतीय सभ्यता को एक ऐसे रूप में दर्शाया गया, जिसे निरंजना ने 'मानवता की बाल्यावस्था' कहा है। सईद के *ओरिएंटलिज्म* के बाद हमने जाना कि औपनिवेशिक परिभाषा के केंद्र में अन्य को परिभाषित करना था। मिल ने स्वयं माना है कि 'सभ्यता के चरण में हिन्दुओं की वास्तविक स्थिति' को

सुनिश्चित करना यूरोपीय लोगों के लिए महत्वपूर्ण है।

यह महत्वपूर्ण है कि मिल ने जब भारत का इतिहास लिखा था, उससे पहले उन्होंने कभी भारत का दौरा नहीं किया था। उनका इतिहास पूरब से संबंधित विभिन्न विषयवस्तुओं और विलियम जोन्स, हेनरी कोलब्रुक, नथानील हाल्लेड आदि के अनुवाद पर आधारित था। पूरब के बारे में जानकारी रखने वाले पूर्ववर्ती विद्वानों की तरह ही मिल के इतिहास ने भारतीयों को 'पाखंडी, कपटी, झूठा' होने के रूप में वर्णित किया (निरंजना : 1992, पृष्ठ संख्या 21 में उद्धृत)। भारत के स्वर्णित युग में यकीन रखने वाले पूरब के बारे में जानकारी रखने वाले विद्वान जोन्स से अलग मिल ने ऐसे किसी भी दावे को सिरे से खारिज किया। रोनाल्ड इंडेन के अनुसार, भारतीय उपमहाद्वीप की संस्कृति, साहित्य को जानने वाले विद्वानों ने भारत को परिभाषित करने के क्रम में हिन्दूवाद की छवि के जरिए भारत को एक नए स्वरूप में सामने रखना चाहा। मिल का मानना था कि ब्रह्मांड की हिन्दू अवधारणा में "कोई सहिष्णुता, बुद्धिमत्ता या सौंदर्य नहीं है", सबकुछ "अव्यवस्था, सनक, लालसा, प्रतिस्पर्धा, अनहोनी, चमत्कार, हिंसा एवं विध्वंसिता" के रूप में है (इंडेन : 1990, 91 में उद्धृत)। भारतीय संस्थाओं की अपनी समीक्षा के आधार पर उन्होंने भारत में सही वैधानिक एवं प्रशासनिक प्रणाली के जरिये भारतीय समाज के क्रांतिकारी परिवर्तन की अनुशंसा की।

मिल से अलग मैकेंजी का मानना था कि भारतीयों का अपना इतिहास है और उन्होंने अपने मैसूर सर्वेक्षण के जरिए दक्षिण भारत के इतिहास को फिर से लिखने पर जोर दिया। हम पहले ही उन सामग्रियों के बारे में बात कर चुके हैं, जिनमें मैकेंजी ने भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन के लिए रुचि दिखाई थी। शाही इतिहास, मंदिरों के शिलालेख, पांडुलिपियाँ इत्यादि इस सामग्री में शामिल थे। उन्होंने अपने सर्वेक्षण पर करीब 10 साल तक काम किया। मैकेंजी का मानना था कि भारतीयों के बीच 'नियमित ऐतिहासिक कथाएँ एवं पुस्तकें' दुर्लभ थीं। इसलिए भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की प्रक्रिया में "धार्मिक दंतकथाओं तथा लोकप्रिय कविताओं एवं कहानियों" पर ध्यान देना चाहिए। इस बीच, मैकेंजी को इस प्रबल विचारधारा के विरुद्ध दक्षिण भारत के वास्तविक इतिहास लेखन का श्रेय दिया गया कि हिन्दुओं के पास 'केवल कुछ प्रमाणिक' ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। प्रमाणिकता के इस दावे को बाद में कई प्राधिकारों ने चुनौती दी और इसे खारिज किया। हालाँकि हमारे लिए उस पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है, जिसे बर्नार्ड कॉन ने "19वीं सदी के भारत में शिल्पकृतियों, प्रचीन कालीन वस्तुओं और कला" में 'वस्तुओं का रूपांतरण' कहा है। कॉन ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा कि किस प्रकार सर्वेक्षण के औपनिवेशिक तौर-तरीके ने अवशेषों की खुदाई की और वस्तुओं को पुनः प्राप्त किया, जिसे बाद में फिर निश्चित ऐतिहासिक अर्थ एवं प्रमाणिकता के साथ जोड़कर देखा गया। भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की पूरी प्रक्रिया कुछ निश्चित यूरोपीय प्रतिमानों के तहत पूरी की गई और निश्चित 'व्याख्यात्मक रणनीतियों' के साथ संलग्न रही है। औपनिवेशिक अभिलेखागार में और इसके जरिए भारतीय इतिहास की व्याख्या की गई तथा इसका पुनर्लेखन किया गया। औपनिवेशिक अभिलेखागार में (अनुवाद के जरिए) जो सूचनाएँ हैं और जिस प्रकार सूचनाओं का इस्तेमाल किया गया या इनकी व्याख्या की गई, वे औपनिवेशिक ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा हैं।

6.2.4 औपनिवेशिक अभिलेख के कार्य

औपनिवेशिक अभिलेखागार के क्या कार्य हैं, यह जानने के लिए हमें एडवर्ड सेड के *ओरिएंटलिज्म* के विचार पर एक नजर डालनी होगी। सईद के लिए अभिलेखागार तथ्यों एवं आँकड़ों का 'निर्दिष्ट स्थान' या संग्रहालय नहीं है। यह एक 'तर्कमूलक स्वरूप' है, जिसका तात्पर्य है कि अभिलेखागार का निर्माण विभिन्न लेखनों में और इसके जरिए किया गया और यह 'विचारों के समूह एवं मूल्यों के एकीकृत समुच्च' से संबद्ध है। ये ऐसे विचार एवं मूल्य हैं, जो पूरब को प्रदर्शित करने के तौर-तरीकों को निर्देशित करते हैं। अभिलेखागार के इस तरह के दृष्टिकोण को प्रस्तावित करते हुए सईद ने सत्ता एवं ज्ञान के बीच संबंधों पर फूको के विचार का उल्लेख किया है और अभिलेखागार की श्रेणी का विस्तार करते हुए इसमें उपन्यासों एवं यात्रा वृत्तांत जैसी गैर-आधिकारिक विषयवस्तुओं को भी शामिल करने पर जोर दिया है। हमने अब तक देखा कि औपनिवेशिक अभिलेखागार ने आवश्यक, पारंपरिक लाइन के साथ-साथ उपनिवेशियों की भी संस्थापना की। पूरब के शुरुआती जानकारों एवं अंग्रेजी ढांचे में स्थानीय लोगों को आम तौर पर और अनमने ढंग से कपटी, आलसी, दबू और 'डरपोक' के रूप में देखा गया। तथ्यों

एवं आँकड़ों पर अधिक बल देने वाली वैज्ञानिक जानकारी पर जोर देते हुए मानव जाति विज्ञान से संबंधित सर्वेक्षण करवाए गए, जिसने स्थानीय लोगों को अमूर्त विचारों के आधार पर नहीं, बल्कि जाति, जनजाति, धर्म आदि जैसी श्रेणियों के आधार पर कठोर बताया।

यदि अभिलेखागार का संचालन निश्चित प्रतिनिधित्व प्रणाली एवं रणनीतियों के जरिए होता है तो यह 'प्रशासन के लिए साधन' के रूप में भी काम करता है। इसने उपनिवेश बसाने वालों को स्थानीय लोगों पर शासन एवं उन्हें नियंत्रित करने का प्रभावी साधन भी दिया। हमें यह निश्चित रूप से याद रखना चाहिए कि जोन्स, मैकेंजी, क्रुक आदि जैसे पूरब के जानकार एवं सर्वेक्षणकर्ता कंपनी एवं साम्राज्य के पदाधिकारी भी थे। उनके कार्यों को साम्राज्यवादी प्राधिकरण से संरक्षण मिला, जिसका इस्तेमाल बाद में प्रभावी प्रशासन के साथ-साथ औपनिवेशिक हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए किया गया।

6.3 भारत की व्याख्या : मानव जाति विज्ञान एवं लोककथाएँ

पिछले अध्याय में हमने उन विषयों की चर्चा की, जो भारत की औपनिवेशिक व्याख्या में मददगार रहे थे। हमने उन विषयवस्तुओं के अनुवाद पर भी गौर किया जिनके जरिए भारत की व्याख्या की गई। आइए अब उन स्रोतों एवं उनके इस्तेमाल पर गौर करें, जिन्होंने औपनिवेशिक ज्ञान के संग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हम पहले ही मैकेंजी द्वारा करवाए गए सर्वेक्षणों का जिक्र कर चुके हैं। मानव जाति विज्ञान से संबंधित जो सर्वेक्षण मैकेंजी और फ्रांसिस बुचानन ने किए, वे अब मानकीकृत नहीं माने जाते हैं। निकोलस बी. डिवर्स का कहना है कि 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारतीय इतिहास के बारे में औपनिवेशिक लेखन 'मानव जाति विज्ञान से संबंधित एक अलग तरह की समझ' की ओर संकेत करते हैं। इसमें 1857 के विद्रोह के बाद के वर्षों में वर्गीकरण एवं शासन के साथ उपयुक्त संलग्नता के बजाय कुछ निश्चित 'प्रशासनिक सूक्ष्मग्राहिता' में योगदान दिया। जैसा कि हमने अब तक जाना है कि 1857 के विद्रोह के बाद लोकप्रिय संस्कृतियों एवं किसानों के जीवन के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित किया गया। रुद्राशु मुखर्जी की व्याख्या से इसे अधिक आसानी से समझा जा सकता है, जिसमें उन्होंने कहा है कि विद्रोहियों को न केवल ग्रामीणों का समर्थन मिला, बल्कि विद्रोह करने वाले अधिकतर सिपाही 'सैनिकों की वेशभूषा में किसान' थे। हालांकि ब्रिटिश अधिकारियों के कुछ शुरुआती कार्य भारत को जाति एवं जनजाति के आधार पर वर्गीकृत करने वाले थे, लेकिन 'उन्हें सुसंगत जाति व्यवस्था के रूप में व्यवस्थित करने' का कोई प्रयास नहीं हुआ (मेटकाफ : 1984, 116)। 1869 में सांख्यिकी विभाग के महानिदेशक के रूप में डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर की नियुक्ति के साथ ही कई विवरणिकाएँ सामने आईं, जिसमें जाति, जनजाति तथा रीति-रिवाजों से संबंधित मानव जाति विज्ञान की विस्तृत जानकारियाँ थीं। एम. ए. शेरिंग का तीन खंडों में प्रकाशित *हिन्दू ट्राइब्स एंड कास्ट्स* अपने आप में इस तरह का पहला काम था, जिसकी शुरुआत 1872 में हुई थी। वर्ष 1871-72 में जनगणना हुई, जिसमें भारत को समझने के लिए मुख्य प्रतीक के रूप में जाति को पेश किया गया। इसके तुरंत बाद एच. एच. रिसले का *द ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ इंडिया* और *द पीपुल ऑफ इंडिया* सामने आया।

जनगणना की शुरुआत के साथ ही भारत के बारे में आनुभाविक जानकारी को वर्गीकृत करने की आवश्यकता महसूस की गई। इसे "भारत के ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण" पर आधारित शुरुआती जानकारी से अलग रूप में देखा गया। जनगणना में लोगों को उनकी जाति, जनजाति एवं धर्म के आधार पर वर्गीकृत किया गया। इस प्रकार, मानव जाति विज्ञान केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं है, बल्कि कुछ निश्चित औपनिवेशिक विषयों के निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव जाति विज्ञान पर आधारित विवेचनात्मक सिद्धांतों में दिखाया गया है कि किस प्रकार मानव जाति विज्ञान से संबंधित जानकारियाँ सत्ता का परिणाम रही हैं। उदाहरण के लिए, जेम्स क्लिफोर्ड ने दावा किया है कि मानव जाति विज्ञान से संबंधित कार्यों में 'तथ्यों' के रूप में पेश किया गया है, वे वास्तव में "आंशिक सत्य" हैं। 1871 में भारतीय अपराधी जनजाति अधिनियम लाया गया, जिसमें कुछ जातियों एवं जनजातियों को स्वभावतः अपराधी घोषित कर दिया गया। उदारण के लिए, डब्ल्यू. एच. स्लीमान ने कहा है कि यदि कोई व्यक्ति इस तथाकथित 'अपराधी जाति' से ताल्लुक रखता है तो इसके लिए किसी सबूत की आवश्यकता नहीं है कि उसने कोई अपराध किया है।

विद्रोह के बाद एक अन्य क्षेत्र लोक कथाओं का भी गहन अध्ययन किया गया। बहुत से उपनिवेशी अधिकारियों का मानना था कि विद्रोह के दौरान स्थानीय लोगों ने मौखिक गल्प कथाओं के माध्यम से गुप्त कूटों के जरिए एक-दूसरे से संबंध स्थापित किया और संवाद किए, जिससे समझना उपनिवेशवादियों के लिए मुश्किल था। सामान्य शब्दों में कहा जाए तो भारतीयों को समझने के लिए लोक कथाओं को अधिक निर्णायक समझा गया। उदाहरण के लिए, आर. सी. टेम्पल का मानना था कि भारतीय प्राचीन रीति-रिवाजों एवं परंपराओं से 'नियंत्रित' होते हैं, जो केवल लोक कथाओं एवं लोकोक्तियों में पाए जाते हैं। लोक कथाओं में रुचि धार्मिक लेखकों तथा 'प्राचीन भारत के संकेतों एवं प्रतीक चिन्हों' को लेकर पूर्ववर्ती चिंताओं से अलग भारतीय समाज की लोकप्रिय संस्कृति के अध्ययन की आवश्यकता की ओर भी संकेत करता है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विलियम क्रुक, जॉर्ज ग्रियर्सन तथा आर. सी. टेम्पल औपनिवेशिक जानकारी के निर्माण में "लोक कथाओं के अध्ययन से संबंधित मनोवृत्ति" का हिस्सा थे। क्रुक के *अ ग्लॉसरी ऑफ नॉर्डन इंडियन पीजेंट लाइफ* (1888-1989) पर टिप्पणी करते हुए शाहिद अमीन ने दावा किया है कि क्रुक का आनुभविक दृष्टिकोण भारत के परंपरागत ग्रामीण स्वरूप को पेश करते हुए वैचारिक कार्य को प्रदर्शित करता है, जहाँ 'परंपरा के भीतर बदलाव को दबाने' के लिए वर्गीकरण एवं श्रेणी-विभाजन एक 'तार्किक रणनीति' बन गया। इस प्रकार की व्याख्या में टेलीग्राफ और रेलवे के रूप में सामने आई आधुनिकता को बाहर रखा गया। अमीन के अनुसार, क्रुक ने न बदलने वाले भारत को पेश किया, जो अंधविश्वासों एवं अन्य रीति-रिवाजों में फंसा था। इसी तरह ग्लोरिया गुडविन रहेजा ने लिखा है कि किस प्रकार उपनिवेशीय लोगों के संवादों को उपनिवेशवादियों ने प्रशासनिक एवं अध्ययनशील विषयवस्तुओं में अभिलेखों की प्रक्रिया के जरिए अपनाया। रहेजा के अनुसार, एक खास समुदाय में विशेषकर 'अभिव्यक्तिशील एवं सामाजिक कार्य' से संबद्ध लोकोक्तियों को जब औपनिवेशिक प्रशासन एवं अध्ययनशील कार्यों में पुनःस्थापित किया गया तो इसे किसी अन्य संदर्भ में पेश किया गया। चूंकि यह लोक साहित्य स्थानीय भाषाओं और बोलियों में उपलब्ध थे अतः उपनिवेशवादी विद्वानों को उन्हें समझने के लिए या तो अनुवाद करने या कराने की विनियोजन या उपयोग की इस प्रक्रिया के जरिये विशेष तरह के भाषणों, लोकोक्तियों एवं मौखिक गल्प कथाओं का 'अनुवाद एवं व्याख्या की गई और इन्हें मुद्रित सामग्रियों में शामिल किया गया', ताकि 'एक ऐसा दस्तावेज तैयार किया जा सके', जिससे यह जानकारी मिल सके कि स्थानीय लोगों ने किस प्रकार जातिगत विचारधारा एवं औपनिवेशिक शासन के लिए सहमति दे दी (विस्तृत व्याख्या के लिए भारतीय अनुवादकों से संबंधित अध्याय देखें)। इसने औपनिवेशिक व्याख्या के साथ-साथ इसके शासन को उचित ठहराने का कार्य किया।

आइए इस संबंध में साधना नैथानी के विचार पर गौर करें, जो उन्होंने लोक कथाओं पर अपने हाल के काम में उन्होंने स्थानीय एजेंसी को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। इस क्रम में उन्होंने बताया कि किस प्रकार भारतीय लोक कथाएँ हमेशा 'प्राचीन, आध्यात्मिक एवं पारंपरिक' नहीं रही हैं, जैसा कि ब्रिटिश शासन ने प्रस्तुत किया है, बल्कि इसमें भी 'ऐतिहासिक समझ' रही है। इससे उनका आशय यह था कि लोक कथाओं में भी ऐतिहासिक बदलावों को स्वयं में समाहित करने की क्षमता होती थी और स्थानीय लोग उपनिवेशवादियों के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं को समझते हुए गल्प कथाओं का निर्माण कर सकते थे। इस प्रकार, उनके शब्दों में, स्थानीय लोग 'बदलाव एवं विकास के वाहक थे; उनके पास गतिशील परंपराएँ नहीं थीं, बल्कि इससे अधिक वे परंपराओं के साथ गतिशील संबंध रखते थे।'

6.4 सारांश

इस अध्याय में हमने चर्चा की कि औपनिवेशिक अभिलेखागार के निर्माण में किन विषयवस्तुओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अनुवाद की इसमें क्या भूमिका रही? इस प्रक्रिया में पता चला कि भारत के बारे में औपनिवेशिक जानकारी का शुरुआती स्वरूप पूरब के बारे में जानकारी रखने वाले विद्वानों द्वारा भारतीय विषयवस्तुओं के अनुवाद के जरिये सामने आए लिखित जानकारियों पर आधारित था। हमने यह भी जाना कि वैधानिक संधियों, महाकाव्यों एवं धार्मिक ग्रंथों का चयन अनुवाद के लिए किया गया। इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की प्रक्रिया भी शुरू की गई। डॉब जैसे शुरुआती इतिहासकार और मिल जैसे अंग्रेज इतिहासकारों ने अंततः भारतीयों के समान पारंपरिक संस्करणों को दोहराया। 19वीं सदी के आखिरी के आधे वर्षों में औपनिवेशिक अभिलेखागार

की प्रकृति ने भारत तथा इसके लोगों के बारे में अधिक वैज्ञानिक जानकारी जुटाने पर ध्यान केंद्रित करने के संकेत दिए। अंत में, हमने इस विषय की चर्चा की कि प्रभावी औपनिवेशिक शासन के लिए किस प्रकार भारतीय भाषाओं को सीखना जरूरी समझा गया और भाषाओं की जानकारी ने ब्रिटिश अधिकारियों को भारतीय जीवन की व्याख्या और दुनिया को समझने में सक्षम बनाया।

6.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अभिलेखागार एवं उपनिवेशवाद के संबंध की चर्चा करते हुए तीन कारकों का उल्लेख करें।
2. क्या आप औपनिवेशिक कार्यकाल में अनुवाद के लिए विषयवस्तुओं के चयन के लिए जिम्मेदार मुख्य कारकों के बारे में बता सकते हैं?
3. औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत की व्याख्या में भाषाओं की भूमिका का वर्णन करें।
4. किस प्रकार विषयवस्तुओं के चयन तथा अनुवाद की प्रक्रिया ने भारत की एक अलग छवि बनाई।
5. मानवजाति विज्ञान से संबंधित उपक्रम एवं औपनिवेशिक जानकारी निर्माण की उत्तरवर्ती तथा पूर्ववर्ती प्रणाली में क्या अंतर है?

6.6 शब्दावली

मेट्रोपोल : औपनिवेशिक दस्तावेजों में मेट्रोपोल का तात्पर्य किसी स्थाई परिधि से अलग एक केंद्र से है। यह संस्कृति के प्रमुख केंद्र के रूप में मातृ देश इंग्लैंड की ओर इंगित करता है।

एथनोग्राफी : संस्कृतियों एवं लोगों के आनुभविक अध्ययन के लिए समाज विज्ञान में इस्तेमाल की जाने वाली विधि।

ओरिएंट लिज्म : पोर्वा संवाद पूर्व के बारे में पश्चिमी विद्वानों द्वारा संरचित विमर्श।

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Cohn, B. (1996). *Colonialism and its Forms of Knowledge: The British in India*. New Delhi, Oxford University Press, 2002.
- Dirks, N. "Colonial Histories and Native Informants: Biography of an Archive" in A. C.
- Breckenridge and Peter van der Veer (Eds.). (1993). *Orientalism and the Postcolonial Predicament: Perspectives on South Asia*. Philadelphia: University of Philadelphia Press.
- France, P. (ed.). (2001). *Oxford Dictionary to Translation Studies*. Oxford University Press, New Delhi.
- Joseph, B (2004). *Reading the East India Company, 1720-1840: Colonial Currencies of Gender*, New Delhi, Orient Longman.
- Inden, R. (1990). *Imagining Indi*, Basil Blackwell, Oxford.
- Metcalf, R. T. (1984). *Ideologies of the Raj*. Cambridge University Press, New Delhi.
- Mukherjee, R. 1984. *Awadh in Revolt, 1857-58: A Study of Popular Resistance*. Oxford University Press, New Delhi.
- Naithani, S. (2009). *In Quest of Indian Folktales: Pandit Ram Gharib Chaube and William Crooke*. Orient Blackswan, Hyderabad.

- Raheja, G. G. (1996). "Caste, Colonialism and Speech of the Colonized: Entextualization and Disciplinary Control in India" in *American Ethnologist*, Vol. 23, No. 3 (Aug.), <<http://www.jstor.org/stable/646349>>.
- Stoler, L. A. (2002). "Colonial Archive and the Arts of Governance" in *Archival Science*, Vol. 2, 1-2 (March). Kluwer Academic Publishers, Netherlands. <<http://www.springerlink.com>>.
- Niranjana, T. (1992). *Siting Translation: History, Post-Structuralism and the Colonial Context*. University of California Press, California.
- Thapar, Romila, (2003), *the Penguin History of Early India*. Penguin, New Delhi.

इकाई 7 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं रूसी साहित्य

इकाई की रूपरेखा

- 7.0 उद्देश्य
- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की रूपरेखा
- 7.3 आधुनिक रूसी साहित्य
- 7.4 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, रूसी साहित्य तथा अनुवाद
 - 7.4.1 भारतीय राष्ट्रवाद एवं रूसी क्रांति पूर्व का साहित्य
 - 7.4.2 भारतीय राष्ट्रवाद एवं क्रांतिकारी रूसी साहित्य
- 7.5 सारांश
- 7.6 अभ्यास एवं बोध प्रश्न
- 7.6 शब्दावली
- 7.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य प्रकृतियों/प्रवृत्तियों की सूची बना सकेंगे;
- आधुनिक रूसी साहित्य की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे;
- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं रूसी साहित्य के संबंध का निदर्शन कर सकेंगे;
- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर रूसी साहित्य के प्रभाव में अनुवाद की भूमिका की पड़ताल कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

पिछले खण्ड में हमने विचार किया कि उपनिवेशवाद तथा अनुवाद किस तरह संबद्ध हैं। हमने इस पर भी विचार किया कि उपनिवेशवाद तथा अनुवाद का संबंध सिर्फ साहित्यिक पाठ तक ही सीमित नहीं है बल्कि अनुवाद की भूमिका विधि संहिता (लीगल कोड) के निर्माण की प्रक्रिया, प्रशासनिक नीतियां, शैक्षणिक नीतियां तथा ब्रिटिश भारत में रहने वाले लोगों के बारे में जानकारी देने वाले जातिगत सर्वे तक फैली हुई है। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के खण्ड के रूप में हमने अभिलेखों के निर्माण तथा भारत से जुड़े विमर्शों के विकास में इसकी भूमिका पर विचार किया है। संक्षेप में, पिछले खण्ड में हमने भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के निर्माण में अनुवाद की भूमिका पर विचार किया है।

यदि उपनिवेशवाद के निर्माण में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण ठीक इसी तरह तो ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर रूसी साहित्य के प्रभाव पर केन्द्रित होगा। इस विश्लेषण में प्रवेश से पूर्व एक वाजिब सवाल यह है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में से साहित्य की भूमिका पर विचार करने की क्या आवश्यकता है? इसका जवाब कुछ इस तरह दिए जा सकते हैं-

भारत के आरंभिक 20वीं सदी के व्यापक राजनीतिक परिदृश्य

(अ) प्रथमतः महात्मा गांधी से लेकर जवाहरलाल नेहरू तथा एम. एन. रॉय तक रूसी साहित्य का गहरा प्रभाव है। हालांकि उपरोक्त तीनों नेतागण भारतीय राजनीति के संदर्भ में सदा एक समान दृष्टिकोण नहीं रखते रहे हैं तथापि, राजनीति के अपने-अपने दृष्टिकोणों में तीनों ही आधुनिक रूसी साहित्य से प्रभावित दीखते हैं।

(ब) दूसरा, 1917 की रूसी क्रांति ने सिर्फ भारत पर, वरन् पूरे विश्व पर अपना प्रभाव छोड़ा। यह प्रभाव इसकी क्रांतिकारी विचारधारा तथा एक विशेष प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना के इसके प्रयोग के कारण था। यह क्रांति कई देशों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी तथा संसारभर के उपनिवेश विरोधी संघर्ष में प्रतिमान बना। इस तरह, भारत में वामपंथी राजनीति भी रूसी क्रांति से प्रभावित हुई। इस प्रभाव के परिणामस्वरूप, रूसी साहित्य को पढ़ने एवं समझने की प्रबल रुचि भी विकसित हुई। भारत में रूसी साहित्य के अनुवाद की प्रक्रिया क्रांति के इस प्रभाव से संबद्ध है। हालांकि, इस प्रभाव के कारण, इस दौरान भारत में लोकप्रिय एवं राजनीतिक उपभोग के लिए सामान्य तौर पर भी साम्यवादी साहित्य का काफी अनुवाद हुआ।

(स) तीसरा, स्वातंत्र्योत्तर काल (1947 के बाद) में भारत तथा सोवियत संघ ने विविध सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में साझेदारी की है। इसी कारण, स्वतंत्रता के बाद भी बड़े परिमाण में रूसी साहित्य का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुआ। लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इसी दौरान भारतीय साहित्य का पर्याप्त सारवान हिस्सा रूसी भाषा में अनूदित हुआ।

7.2 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की रूपरेखा

इस खण्ड में, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के महत्वपूर्ण हिस्सों को पहचानने की कोशिश की जाएगी। यह राष्ट्रीय आंदोलन में रूसी साहित्य की भूमिका को समझने में हमारी मदद करेगा। ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता के लिए भारत के संघर्ष को सामान्यतः भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की संज्ञा दी गई। हालांकि अंग्रेजों के विरुद्ध सिर्फ नहीं, अपितु कई तरह के संघर्ष किए गए हैं। उदाहरण स्वरूप, इसी तरह का एक संघर्ष 1857 का विद्रोह था, जिसमें बड़ी संख्या में राजा/शासक तथा आम जनता ने हिस्सा लिया। हालांकि, इस तरह के विद्रोह, 1857 से पूर्व हुए कई किसान संघर्षों से भिन्न थे, तथा 197 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक जारी रहे। कुछ संदर्भों में मसलन पश्चिमी असम, तेलंगाना आदि, ये किसान आंदोलन 1947 के बाद भी तब तक जारी रहे जब तक कि उन्हें भारत के राष्ट्र-निर्माण प्रक्रिया में शामिल न कर लिया गया।

इसके अतिरिक्त 19वीं तथा 20वीं सदी के आरंभ में आदिवासी आंदोलन के नाम से ख्यात कई देशी संघर्ष भी हुए। ऊपर वर्णित सभी संघर्षों के स्वरूप की भिन्नता को इस प्रकार समझा जा सकता है-

- (अ) आंदोलन को सामाजिक संयोजन अर्थात् संघर्ष में किन लोगों ने हिस्सा लिया।
- (ब) आंदोलन का उद्देश्य अर्थात् संघर्ष के कारण क्या रहे तथा
- (स) भिन्न आंदोलनों में अपनाए गए संघर्ष के तरीके

इसके अतिरिक्त, आधुनिक राजनीतिक दलों खासतौर पर 1885 में गठित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में छेड़ा गया संघर्ष भी इस दौर का प्रमुख संघर्ष था।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास की निर्णायक अवधि में 20वीं सदी का दूसरा दशक महत्वपूर्ण था। इस अवधि में कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रवादी राजनीति को प्रमुखता से अभिरेखित किया जा सकता है। इस युग में गांधी की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। 19वीं सदी में चल रहे विभिन्न उपनिवेश विरोधी संघर्षों, खास तौर पर किसान एवं आदिवासी आंदोलनों पर हम पहले ही पीछे चर्चा कर चुके हैं। औपनिवेशिक व्यवस्था के विरुद्ध चल रहे इन संघर्षों में भूमि संबंध, वन-उत्पादों पर नियंत्रण, शोषणकारी कर नीतियां, आधुनिक खनन तथा खनिज निष्कर्षण के कारण आम जन का उनकी भूमि से विस्थापन, परंपरागत हस्तकरघा/हस्तशिल्प का पतन तथा रोजगार की कमी, आदि प्रमुख मुद्दे थे। सबसे प्रमुख बात यह कि ये आंदोलन सिर्फ अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं थे, अपितु उन सभी लोगों के विरुद्ध थे, जो औपनिवेशिक व्यवस्था में शामिल थे। इसमें जमींदार या व्यावसायिक वर्ग जैसे भारतीय भी शामिल थे। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में औपनिवेशिक शासकों के विरुद्ध एक व्यापक आंदोलन छेड़ने के उद्देश्य से ये भिन्न-भिन्न आंदोलन विभिन्न स्तरों पर एक साथ जुड़ गए। इस संदर्भ में, विभिन्न स्तरों पर चल रहे इन भिन्न-भिन्न आंदोलनों को एक साथ लाने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की निर्णायक भूमिका रही है किन्तु ऐतिहासिक संधि के इस दौर में इन आंदोलनों के एक साथ आने के बावजूद इनके उद्देश्यों तथा सामाजिक

पृष्ठ भूमि की भिन्नता बनी रही तथा ये आंदोलन एक अलग ऐतिहासिक संधि की ओर प्रवृत्त हुए।

इनमें से कई संघर्ष आजादी के बाद भी जारी रहे। इसीलिए, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एक ही आंदोलन नहीं था। यह कई आंदोलनों का समूह था, जिन्होंने भिन्न-भिन्न स्तरों पर एक दूसरे से जुड़कर मजबूत ब्रिटिश विरोधी नीतियों का निर्माण किया, जिसके परिणामस्वरूप 1947 में भारत को आजादी प्राप्त हुई।

19वीं तथा 20वीं सदी के आरंभ के दौरान उभरने वाला भारतीय मध्यवर्ग एक महत्वपूर्ण सामाजिक समूह था। इंग्लैण्ड के मध्यवर्ग जिसमें बड़ी संख्या में औद्योगिक बुर्जुआ शामिल थे। से भारतीय मध्यवर्ग जिसमें बहुलांश में सेवा-समूह समाविष्ट था सर्वथा भिन्न था। कांग्रेस के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय मध्यवर्ग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई मध्यवर्ग की यह भूमिका नेतृत्व तथा प्रतिभागिता दोनों ही स्तरों पर थी। भारतीय मध्यवर्ग से जुड़ा दूसरा बिन्दु राष्ट्रीय आंदोलन के सापेक्ष शिक्षा की भूमिका में सक्रिय बदलाव था।

पर्याप्त प्रशिक्षण देकर लिपिक वर्ग तैयार करने पर बल देने वाली औपनिवेशिक शिक्षा नीति से भारतीय मध्यवर्ग शैक्षणिक आधार को जाना जा सकता है। यह नीति मैकाले द्वारा तैयार की गई थी। हालांकि, आधुनिक शिक्षा से ज्ञान तथा नई जागृति का प्रसार भी हुआ। नूतन ज्ञान तथा नवीन जागृति में राष्ट्रीयता, आधुनिक राजनीतिक विचार एवं दर्शन का भाव था। क्या आप सोच सकते हैं कि साहित्य हमारे संदर्भों में रूसी साहित्य के अनुवाद पर हो रहे विवेचन में यह बिन्दु क्यों महत्वपूर्ण है ?

ऐसा इसलिए क्योंकि साहित्य तथा इसके विचारों के अभिग्रहण हेतु पाठकों अर्थात् ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो साहित्य को पढ़ने के लिए पर्याप्त शिक्षित हों तथा राजनीतिक उद्देश्यों के सम्मुख इसकी व्याख्या हेतु राजनीतिक तौर पर जागरूक हों। इसके अतिरिक्त वे पढ़ने के लिए पुस्तकें खरीद सकने में भी समर्थ हों। भारतीय मध्यवर्ग इस संदर्भ में लाभकर स्थिति में था। इसी कारण, रूसी साहित्य के प्रभाव को उसका प्रयोग करने वाले लोगों को समझे बिना नहीं समझा जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि किसी साहित्य के अनुवाद, उसके अभिग्रहण एवं उसकी व्याख्या के संदर्भ में ये बातें एक प्रासंगिक एवं सामाजिक आधारभूमि लिए हुए हैं।

7.3 आधुनिक रूसी साहित्य : एक परिचय

रूसी साहित्य से हमारा अभिप्राय रूस या इसके उत्प्रावासियों के साहित्य तथा उन स्वतंत्र देशों के रूसी भाषा के साहित्य से भी है, जो कभी ऐतिहासिक तौर पर प्रसिद्ध रूस या सोवियत संघ का हिस्सा थे। 19वीं सदी से पूर्व रूसी साहित्यिक परंपरा के बीच वपन उेनिस गावरिला देरजाविल, अलेक्जेन्डर फोनविजिन, वासिली सुमारोकोव, निकोले करमजिन प्रेदियाडोत्स्की तथा द्ववान क्रिलोव जैसे कवियों, नाटककारों तथा लेखकों द्वारा हुआ। पीटर महान तथा कैथरिन महान, जिन्होंने रूसी वर्णमाला में सुधार एवं साहित्यिक रचना हेतु जनभाषा के विचार का समर्थन किया, रूसी आधुनिकीकरण से संबद्ध हैं।

उन्नीसवीं सदी को रूसी साहित्य के स्वर्ण युग के रूप में जाना जाता है। वेसिली झुकोवस्क्यन्द, अलेक्जेन्डर पुश्किन आदि नाम इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। पुश्किन को रूसी साहित्यिक भाषा के सौन्दर्यीकरण के साथ ही रूसी साहित्यिक कौशल के एक नये आयाम का परिचय कराने का श्रेय भी जाता है। मिखाइल लरमन्तोव, एवगनी बरतिन्सकी, कांस्टैटिन बत्युस्कोव, निकोले नेकरासोव, टॉल्स्टॉय समेत नए कवियों की एक पूरी पीढ़ी ने पुश्किन के कदमों का अनुसरण करना आरंभ किया। साथ ही साथ गद्य का विकास भी हो रहा था। रूस के पहले महान उपन्यासकार निकोलई गोगल है जिनका अनुसरण लघु कहानी तथा उपन्यास विधा के सिद्धहस्त रचनाकारों निकोलई लेस्कोव, द्ववान तुर्गनेव, मिखाइल साल्तिकोव-शेट्रिन, इवान नोनकारोव ने किया। लियो टाल्स्टॉय तथा प्योदोर दोस्तोत्स्की की ख्याति शीघ्र ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल गई। एफ.आर. लीविस जैसे विद्वानों ने इन्हें महानतम उपन्यासकारों में से एक माना है। सदी के उत्तरार्द्ध में अन्तोन चेखव उत्कृष्ट लघु कथा लिखते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख विशिष्ट नाटककार बन गए।

20वीं सदी के आरंभ को रूसी कविता का 'रजत युग' माना जाता है। इस दौरान के कुछ लक्ष्य प्रतिष्ठित कवियों के नाम अलेक्जेंडर स्लॉक, सरगई एसेनिन, वालरि ब्रुसोव, कोन्स्तातिन बालपोन्त, मिखाइल कुजमिन, सागा कॉर्नी, निकोले गुमिलयोव, मैक्सी मिलियन वोलोसिन, इनोकेन्ती एनेस्की, हैं। रजत युग से जुड़े कुछ अन्य कवि अन्ना

अखमातोव मारिना स्वेतेवा, ओसिप मैनडल स्टैम तथा बोरिस पास्तरनाक हैं। हालांकि रूसी साहित्य का यह रजत युग रूसी साहित्यिक परंपरा के विकास के लिए जाना जाता है, परन्तु वेलिमिर ख्लेबनिकोव, डेविड बरल्युक अलेक्सी क्रुचेनिख तथा ब्लादिमिर मायकोव्स्की जैसे अतांगार्द कवियों ने इसका अतिक्रमण करने की कोशिश की। सोवियत शासन के शुरुआती वर्ष अवांगार्द साहित्यिक समूहों के प्रचुरोद्भव के रूप में जाना जाता है। आंदोलन प्रमुखतम आंदोलनों में से एक है, जिसमें निकोले जाबोलोत्स्की, अलेक्जेन्डर व्येदेन्स्की, कोन्स्तांतिन वैगिनोव, एवं प्रमुख रूसी विसंगतिवादी रचनाकार उैनिल खाम्से शामिल थे। भाषा के साथ प्रयोग करने वाले अन्य रचनाकारों में उपन्यासकार आन्द्र प्लातोनोव, एवं यूरी ओलिशा, तथा लघु कहानीकार आइजक बाबेल तथा मिखाइल जोशेन्को हैं।

1930 में, समाजवादी विचारधारा को आधिकारिक तौर पर स्वीकार कर लिया गया। मैक्सिम गोर्की, नोबेल पुरस्कार प्राप्त मिखाइल शोलोखोव, एवं एलेक्से निकोलायेविच टॉल्स्टॉय उस युग के ख्याति लब्ध उपन्यासकार थे। कोन्स्तांतिन सिमोनोव तथा अलेक्जेन्डर व्दारदोव्स्की कवि आज तक पढ़े जाते हैं। हालांकि, अलेक्जेन्डर सेराफिमोविच, निकोलई ऑस्ट्रेव्स्की, अलेक्जेन्डर फादेयेव, फ्योदारे ग्लादकोव तथा देम्यान बेदनी जैसे अन्य रचनाकारों की रचनाएं 1989 के बाद अब तक मुख्यधारा के प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित नहीं हो पायी हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व सिर्फ कुछ सोवियत रचनाकार ही समाजवादी यथार्थवाद की निर्देशिका के अनुपालन के बगैर प्रकाशित हो सके हैं। किसी राजनीतिक विचारधारा से स्वतंत्र लेखन पर बल देने वाले सेरापियन मंडल के रचनाकारों को शासकवर्ग द्वारा अपना दृष्टिकोण त्यागकर समाजवादी यथार्थवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। द मास्टर एण्ड मारगारिटा के रचयिता मिखाइल बुल्गाकोव एवं डॉक्टर झिवागो उपन्यास के रचनाकार नोबेल पुरस्कार प्राप्त बोरिस पास्तरनाक जैसे कुछ रचनाकारों ने रचनाओं के प्रकाशन की उम्मीद के बगैर रूसी साहित्य की प्रतिष्ठित परंपरा को जारी रखा। पास्तरनाक को नोबेल पुरस्कार को स्वीकार न करने के लिए बाध्य किया गया। इसी दौरान इवानो, जोर्जी इवानोव तथा ब्लादिस्लाव खादोसेविच (कवि), गेटो गजदानोव, मार्क अलदानोव एवं ब्लादिमीर नाबोकोव उपन्यासकार तथा लघुकथाकार इवान बुनिन जैसे प्रवासी रचनाकारों ने निर्वासन में भी लेखन को जारी रखा।

1953 स्टालिन की मृत्यु का वर्ष एवं शुरुआती 1960 के बीच की अवधि में खुचेव थॉ नामक आंदोलन का विकास हुआ। इस दौरान सोवियत संघ में प्रतिबंध को आंशिक तौर पर हटाया गया तथा लाखों राजनीतिक कैदियों के गुलाम मजदूर गृह से रिहा किया गया, जिसके पीछे निकिता खुचेव की स्तालिनवादि विरोधी तथा अन्य देशों के साथ सौहार्दपूर्ण सामंजस्य की नीतियां रहीं।

खुचेव थॉ के माध्यम से साहित्य में एक नूतन ऊर्जा का संचार हुआ। काव्य एक जनवादी सांस्कृतिक परिघटना बन गया। येवगेनी येवतुशेनको, आन्द्रे सवोजेनेसेन्स्की, रॉबर्ट रोज देस्तवेनस्की तथा बेला अख्मादुलिना आदि कवियों ने अपनी कविताओं को पढ़कर बड़े जनसमूह को प्रभावित एवं प्रेरित किया।

कुछ लेखकों ने सोवियत विचारधारा के विरोध का साहस दिखाया। उदाहरणस्वरूप लघुकथाकार वरलाम शालामोव तथा नोबेल विजेता उपन्यासकार अलेक्जेन्डर सोल्जेनित्सिन ने गुलाम गृह के जीवन के बारे में लिखा है, एवं सासिली ग्रॉमैन ने सोवियत संघ के आधिकारिक इतिहासवृत्त का विरोध करते हुए द्वितीय विश्वयुद्ध की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया है। इन साहित्यकारों को देशद्रोही की संज्ञा दी गई तथा 1960 तक वे अपनी प्रमुख रचनाओं को प्रकाशित नहीं कर सके। किन्तु खुचेव थॉ नामक यह आंदोलन लम्बे समय तक नहीं चल सका। 1970 ई. में कुछ प्रमुख रचनाकारों की रचनाओं के प्रकाशन पर न सिर्फ शोक लगा दी गई, वरन् अपने सोवियत विरोधी विचारों के कारण उन्हें अभियोजन का शिकार होना पड़ा।

कुछ रचनाकारों को देश से निष्कासित कर दिया गया। अन्य रचनाकारों में नोबेल विजेता कवि जोसेफ ब्रोदस्की, उपन्यासकार वासिली अक्सेनोव, एड्वर्ड लिमोनोव तथा साशा सोकोलोव एवं लघु कहानीकार सर्गई दोवलातोव अमेरिका की ओर विस्थापित होना पड़ा जबकि वेनेदिक्त एरोफेयेव तथा ओलेग ग्रिगोरिव महात्यसनिता के शिकार हो गए। उनकी रचनाएं आधिकारिक तौर पर पेरिस्ट्रेएका तक प्रकाशित नहीं हो सकीं। हालांकि कुछ पाठकों ने इनका प्रकाशन 'समिज्दत' शैली में जारी रखा।

1960 के आंदोलन के बाद, सोवियत के विज्ञानपरक साहित्य ने अपनी शैली-निर्माण का कार्य आरंभ किया। दर्शन, नीतिशास्त्र, आदर्श विचार इसके केन्द्र बने। समाज विज्ञानपरक साहित्य की शैली सर्वाधिक लोकप्रिय थी। आरकेडी बंधु बोरिस स्ट्रुगत्स्की तथा किर बुलिकोव की रचनाएं सामाजिक समस्याओं को उकेरती हैं तथा प्रायः ये रचनाएं तत्कालीन सोवियत समाज पर गहरा व्यंग्य भी करती हैं। इसके विरुद्ध, इवान येफेरेमोव अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राचीन ग्रीक तथा भविष्य की अपनी आदर्श कल्पना के जरिए प्रसिद्ध हुए। राष्ट्रीय आंदोलन के ऐतिहासिक संदर्भों में व्याख्यायित किया गया।

7.4 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, रूसी साहित्य तथा अनुवाद

हमारे अब तक के विवेचन में, हमने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रकृति तथा आधुनिक रूसी साहित्य के कुछ प्रमुख प्रवृत्तियों जैसे दो मुख्य स्रोतों का अध्ययन कर लिया है। हमने यह भी दिखाने की कोशिश की है कि भारत में रूसी साहित्य के अभिग्रहण एवं अनुवाद के प्रश्न को युगीन ऐतिहासिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के साथ-साथ पाठक समूह के सामाजिक आधार के संदर्भ में देखे जाने की जरूरत है। दूसरे शब्दों में यदि हम रूसी साहित्य को अनुवाद एवं उसके पाठकगण के संदर्भ समझे तो यह बात उभर कर आती है कि इस साहित्य अब हम दो व्यापक वर्गों रूसी क्रांति पूर्व का साहित्य एवं क्रांतिकारी रूसी साहित्य के अंतर्गत भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं रूसी साहित्य के संबंध एवं अनुवाद पर विचार करेंगे।

7.4.1 भारतीय राष्ट्रवाद तथा रूसी क्रांति पूर्व साहित्य

7.4.2 भारतीय राष्ट्रवाद तथा क्रांतिकारी रूसी साहित्य

भारत में समाजवादी आंदोलन के विकास की प्रक्रिया रूसी क्रांति से आरंभ हुई। हालांकि 1871 में कोलकाता के एक समूह ने पहले अन्तर्राष्ट्रीय के भारतीय खण्ड की स्थापना हेतु कार्ल मार्क्स से संपर्क किया। पर यह योजना फलीभूत न हो सकी। मार्च 1912 के एक भारतीय प्रकाशन अंग्रेजी में प्रकाशित पहला ही आलेख 'मार्क्स रिवायू' मार्क्स तथा एंजिल्स के नाम को इंगित करता है। कार्ल मार्क्स एक आधुनिक ऋषि, नायक एक संक्षिप्त जीवनी परक आलेख लिखा। किसी भारतीय भाषा में पहली बार कार्ल मार्क्स की जीवनी 1914 में आर. राधाकृष्ण पिल्लै द्वारा लिखी गई। रूसी क्रांति के दौरान भारतीय मीडिया पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव पड़ा। कई भारतीय समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं को आत्म-निर्णय के अधिकार की बोलचाल नीति काफी प्रभावित कर रही थी। बिपिन चन्द्र पाल तथा बाल गंगाधर तिलक उन महत्वपूर्ण भारतीयों में से थे जिन्होंने लेनिन तथा रूस के अन्य नए शासकों के प्रति अपनी प्रेरणा/भाव का अभिव्यक्त किया। अब्दूल सतार खेरी तो अब्दूल जफ्फार खेरी क्रांति की सूचना पाते ही पास्को चले गए। वहां उन्होंने लेनिन से मिलकर शुभकामनाएं दीं। उत्तरी अमेरिका के गदर पार्टी जैसे उत्प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों पर भी रूसी क्रांति का गहरा प्रभाव रहा।

भारतीय साम्यवाद के उदय में खिलाफत आंदोलन की बड़ी भूमिका रही है। बड़ी संख्या में भारतीय मुसलम सोवियत संघ की यात्र के दरम्यान भारत छोड़कर साम्यवादी बन गए। कुछ हिन्दुओं ने भी इस दौरान उनका साथ दिया। भारत में बोलोविक विचारों के बढ़ते प्रभाव से औपनिवेशिक सत्ता वर्ग गहरे में निराश था। इसके विरुद्ध पहला कदम मुस्लिमों को साम्यवाद के अस्वीकार हेतु उकसाते हुए फतवे को जारी करना था। साम्यवादी प्रभाव पर नियंत्रण हेतु गृह विभाग द्वारा एक विशेष शाखा गठित की गई। कस्टम अधिकारियों को भारत में मार्क्सवादी साहित्य के आयात पर निगरानी रखने के आदेश दिए गए। बड़ी मात्र में साम्यवादी विरोधी प्रचार की रचनाएं प्रकाशित की गईं। बंबई के एस. ए. डांगे रूसी विकास से प्रभावित होने वाले भारतीयों में से एक थे। 1921 में, उन्होंने गांधी बनाम लेनिन नाम से एक पत्रिका प्रकाशित कराया, जिसमें दोनों ही नेताओं के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। बंबई के एक स्थानीय मिल मालिक रणछोड़दास भवन लोटवाला के साथ मिलकर, मार्क्सवादी साहित्य का एक पुस्तकालय गठित किया गया और इस तरह मार्क्सवादी साहित्य के अनुवादों को प्रकाशन आरंभ हुआ। 1922 में, लोटवाला की मदद से डांगे ने 'सोशलिस्ट' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक की शुरुआत की, जोकि पहली भारतीय मार्क्सवादी/साम्यवादी पत्रिका थी।

7.5 सारांश

7.6 अभ्यास एवं बोध प्रश्न

7.7 शब्दावली

- ओद्र्यू आंदोलन** : यह कुछ रूसी कवियों, अभिनेताओं, संगीतकारों तथा फिल्म निर्देशकों का एक समूह था, जिन्होंने प्रस्तुत को एक नया रूप देने की कोशिश की। हालांकि यह अवांगार्ड आंदोलन होने की वजह से इस आंदोलन का तीखी आलोचना का सामना करना पड़ा।
- सेरापियन मंडल** : यह रूस में 1921 में गठित लेखकों का एक समूह था। इसका नाम एक साहित्यिक समूह 'डाई सेरापियन ब्रदर' पर पड़ा।
- गंलाग मजदूर गृह** : यह कई सोवियत मजदूर गृहों की सहायता करने वाली प्रशासनिक शाखा है। इन संस्थानों में बड़ी संख्या में अपराधियों समेत राजनीतिक कैदी रहा करते थे। गुलाग सोवियत संघ में राजनीतिक दमन के प्रमुख उपकरण के रूप में जाना जाता है।
- पेरेस्ट्रोएका** : इसका अर्थ है- 'पुनर्चना' यह सोवियत नेता मिखाइल गोरबाचोव द्वारा जून 1987 में राजनीतिक एवं आर्थिक सुधारों के लिए प्रयुक्त एक रूसी पद हैं। यह सोवियत संघ के राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था की पुनर्चना से संबंधित है।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इस अवधि के दौरान बॉम्बे में व्यावसायिक थिएटरों के विकास के क्रम ने विभिन्न ढरों का पाल किया। पारसी, एक ऐसा समुदाय जिसने पश्चिमी जीवन शैली को अपनाया बॉम्बे में नाटकीय प्रस्तुतियों की शृंखला का आरंभ किया। इस रचनाशील कल्पना से युक्त समुदाय पश्चिमी नाटकीय तकनीकियों के व्यावसायिक क्षमता को समझने वालों में सबसे पहला समुदाय था। इनकी प्रस्तुतियाँ अलंकारिक अभिनय, शब्दाडंबर संवाद, प्रचलित और उत्तेजित संगीत, अद्भुत पृष्ठभूमिका, भड़कीला साज-सज्जा और मंच को भ्रामक रूप देकर प्रस्तुत करने के लिए पूरे भारत में प्रसिद्ध थी। इन नाटकों में प्रयुक्त होने वाली भाषा हिन्दुस्तानी थी परंतु मंच की साज-सज्जा का सामान तीव्रगति और दृश्यनुमान प्रभाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से लंदन से मँगाया जाता था। पारसी नाटकों ने शेक्सपीयर को मनोरंजन का सबसे उपयोगी साधन समझा। शेक्सपीयर के रूपांतर की उपयोगी साधन समझा। शेक्सपीयर के रूपांतर की कहानी, जिससे कई प्रकार के अनुवाद और भाषांतर जुड़े हैं, प्रत्येक एक अलग स्तर की संरचित कहानी प्रस्तुत करती है।

शेक्सपीयर विभिन्न संस्कृति-समूहों द्वारा निर्मित किया गया और एक-दूसरे के उद्देश्यों के अनुकूल बरकरार रखा गया।

शेक्सपीयर के नाटक एक भाषा से दूसरे भाषा में सिर्फ अनुवाद या रूपांतर मात्र ही नहीं था, वे एक प्रकार से सांस्कृतिक संवाद थे जिसमें सत्तापक्ष (औपनिवेशिक रूप) भारतीय परिदृश्य में स्वीकृत किया गया और उसे वैसा ही दिखाया जाता रहा। एम.वी. मल्कनी, एक सिंधी विद्वान, 'रोमियो एंड जूलिएट' गुजलार-अम-गुलनार (1900) में रूपांतरित, एक ट्रेजेडी जिसे प्रचलित दर्शकों के दबाव में एक खुशनुमा नाटक का अंत दिया गया था-के बारे में बताते हैं कि डी.जे. सिंह ड्रामैटिक सोसायटी ने इसके अति-भड़काऊ प्रेम दृश्य के लिए कड़ी निंदा की। इस प्रकार के अनुवाद और संवाद ने जहाँ एक तरफ नई साहित्यिक परंपरा का उद्घाटन किया वहीं दूसरी तरफ यह नए सामाजिक नैतिकता के दायरे में रहकर जातीय व्यवस्था और लिंग संबंधों में बदलाव को लक्ष्य किया। यह एक रोचक तथ्य है कि कैसे "विकारविलासिता" (1883) की भूमिका में, Hamlet का मराठी अनुवाद, गोपाल गणेश अगरकर (1856-95) एक समाज-सुधारक, राष्ट्रवादी नेता, लिखते हैं कि विभिन्न संस्कृतियों के नाटकों के पढ़ने का उद्देश्य उसके अपने सांस्कृतिक समाज की सीमाओं को जानना और समझना है।

8.5 आधुनिक यूरोपीय साहित्य और भारतीय संवेदना

अब जब हमें यूरोपीय साहित्य से भारतीय साहित्य में अनुवाद के क्षेत्र और प्रकृति के बारे में पता है, हम भारतीय संवेदना पर यूरोपीय साहित्य और संस्कृति के अन्य प्रभावों का उल्लेख कर सकते हैं। यह हमें कलात्मक अभिव्यक्ति के विभिन्न क्षेत्रों में यूरोपीय साहित्य और संस्कृति की ग्राह्यता की ओर अग्रसर करेगी।

8.5.1 भारतीय अंग्रेजी साहित्य

एक साहित्यिक क्षेत्र जो भारतीय संवेदनाओं द्वारा यूरोपीयन साहित्य के रचनात्मक ग्रहणीयता का स्पष्ट प्रमाण देती है वह है भारतीय अंग्रेजी साहित्य। जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं, उन्नीसवीं शताब्दी तक अंग्रेजी "आधुनिक" की भाषा, "नयापन" की आवाज बन चुकी थी। औपनिवेशिकों की भाषा होने के नाते, अंग्रेजी औपनिवेशिकों द्वारा एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में स्वी त की गई थी। औपनिवेशिकों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे बाहरी दुनिया से इसी भाषा में संपर्क करें। यह शिक्षित भारतीयों की भी भाषा बन गई। 1816-1820 के बीच राममोहन ने 'केना, द ईसा, द मुंडका' और 'कथा उपनिषद्' का बांग्ला और अंग्रेजी में अनुवाद किया; दरअसल उनके सारे महत्वपूर्ण बांग्ला में लिखे गए लेखों का उन्होंने खुद अंग्रेजी में अनुवाद किया। उनके पाठक भारतीय और ब्रिटिश दोनों थे, और वह पहले द्विभाषी लेखक थे जो उन्नीसवीं सदी में भारत में दोनों का प्रयोग करते थे।

राजा राममोहन राय के बाद, हेनरी लुईस विविचन डेरोजिओ (1809-1823) ने 'Poems' (1827) और "The Fakeer of Jungheera" (1828) में प्रकाशित किया। उसके लिए अंग्रेजी में लिखना लाजिमी था, चूँकि वह एक ही भाषा (अंग्रेजी) जानते थे; परंतु उनकी कविताओं का सार पारंपरिक अंग्रेजी कविताओं से एकदम हटकर था। उस समय जब राममोहन का "सतीप्रथा" के खिलाफ आंदोलन अपने चरम सीमा पर था, डेरोजिओ ने कविता

के नए आदर्श को प्रस्तुत किया। लगभग उसी समय काशीप्रसाद घोष (1809-1873) ने “The Shair and Other Poems” (1830) प्रकाशित किया। जल्द ही, अंग्रेजी बड़े पैमाने पर साहित्यिक उत्पादन का जरिया बनने वाला था। आजादी के बाद, इस शैली ने गति पाई और भारतीय अंग्रेजी साहित्य ने दोनों भारतीय और अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक परिवेश में स्थान और प्रशंसा हासिल की।

8.6 भारतीय कला के विभिन्न शैलियों पर यूरोपीयन सांस्कृतिक आदान-प्रदान का प्रभाव

हमारे अभी तक की गई चर्चा में, हमने न सिर्फ यह समझने की कोशिश की है कि यूरोपीय साहित्य का कौन हिस्सा अनूदित हुआ है बल्कि यह भी कि कैसे हुआ है। चर्चा के द्वारा हम मामले की कोशिश करते हैं कि यूरोपीय साहित्य सांस्कृतिक आंदोलन को कैसे अनुवाद के माध्यम से प्रभावित किया है और संवाद स्थापित किया है। सांस्कृतिक आंदोलन न सिर्फ साहित्य बल्कि शिल्प, कला और स्थापत्य को भी अपने में सम्मिलित कर लेती है। इन क्षेत्रों में भी यूरोपीय प्रभाव उतना ही स्पष्ट था जितना कि साहित्य में। इन क्षेत्रों में ‘अनुवाद’ की क्या भूमिका थी? इन मामलों में, अनुवाद किसी विचार की रचना मात्र नहीं बल्कि रूप भी थी। यह विचार या अवधारणा की रचना और रूप दोनों हैं? जिसमें यूरोपीयन और भारतीय संबंधों में अनुवाद को देखा जा सकता है। निम्नांकित चर्चा इस संबंध में एक संक्षिप्त परिचय के रूप में देखी जा सकती है।

8.6.1 कला

सांगठनिक शुरुआत और व्यैयक्तिक अनुभव पश्चिमी कला के प्रभाव का परिणाम था। सबसे पहला कला विद्यालय कलकत्ता मैकेनिक्स इंस्टीट्यूट और स्कूल ऑफ आर्ट्स की स्थापना फ्रेडरिक कोरबिन द्वारा 1839 में कलकत्ता में की गई। दूसरा विद्यालय औद्योगिक कला को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सोसायटी फॉर द प्रमोशन ऑफ इंडिस्ट्रियल आर्ट द्वारा 1839 ई. में खोला गया। इसका प्रमुख उद्देश्य माँग और आपूर्ति अनुपात में बढ़ती हुई चुनौतियों के मद्देनजर रचनाकारों और काश्तकारों में रचनात्मक हुनर को पैदा करना था। चेन्नई में, डॉ. अलेक्जेंडर हंटर, सर्जन ने 1850 ई. में भारतीय कला को उतारने के लिए ‘ललित कला के मानवीय संस्कृति’ पर आधारित आर्ट स्कूल खोला।

1852 ई. में स्थानीय प्रेस द्वारा प्रोत्साहित भारतीय सौंदर्यता को बढ़ावा देने के दिनांक में लंदन में ‘विशाल प्रदर्शनी में भारतीय कला’ की भारी सफलता ने जमशेदजी जीजीभाई, एक पारसी उद्योगपति को आर्ट स्कूल को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए प्रेरित किया। इन सब और अन्य व्यैयक्तिक अनुभवों और रुझानों ने नए रूपों के उदय में बढ़ोत्तरी दिलाई।

ब्रिटिश अकादमी कलाकारों ने भारतीय दर्शकों को विक्टोरियन शैली के जादुई कला (इलुजनिस्ट आर्ट) से परिचय कराया। भारतीय और ब्रिटिश कला के संगम से नए शैलियों जैसे तैल चित्र, प्राकृतिक छटाओं और दृश्यों-जो शैली भारतीय कलाकारों में नहीं थी का उद्भव हुआ। यह बदलाव दृश्य कला तक सीमित नहीं था बल्कि स्थापत्य और शिल्प कलाओं के व्यवहार में नए बदलाव आए। आचार्य की बात है, भारतीय और ब्रिटिश कला कभी भी उच्चता या पदानुक्रम के माप से संचालित नहीं था। हालाँकि 1920 ई. की राष्ट्रवादी विचारधारा ने पूर्व-औपनिवेशिक कलाओं की मौलिकता और स्वदेशी भाव पर जोर दिया, परंतु फिर भी यह यूरोपीयन और भारतीय कला तकनीकों के मिश्रण से अछूता न रह सका।

कालीघाट पेंटिंग्स उन पुराने शैलियों में से एक जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के साथ बदला। ग्रामीण कलाकारों का कलकत्ता शहर के पलायन के साथ, कालीघाट की लोक कला बहुत जल्द ही पोपुलर आर्ट में बदल गई। यह सही आँका जाता है कि कालीघाट पेंटिंग्स और कलकत्ता की मशीनी उत्पादन की अवधि साथ-साथ चल रही थी। आबरंग, फोटोग्राफी, वुडकट, फोलियोनुमा मिल पेपर, शिलामुद्रण, तैलमुद्रण और छपाई के साथ की ब्रिटिश कला के तकनीकों ने दृश्यमान छवि की अवधारणा को एक नया रूप प्रदान किया। चूँकि कला बाजार में पैदा हुआ था। यह समकालीन समाज के विषयवस्तु को धारण करने वाली एक गतिशील स्थल थी। 1860 ई. में कलकत्ता में फोटोग्राफी की शुरुआत हुई। बाजार में बढ़ती यूरोपीयन तस्वीरों और समकालीनता ने कालीघाट पेंटिंग्स को

बाबुओं और बीवीयों, दरबारियों और अभिनेत्रियों की व्यावहारिकता और विक्टोरियन पहचान की शैली का रूप प्रदान कर दिया।

राजा रवि वर्मा की पेंटिंग्स रोमांटिक कलाकारों के यूरोपीय असमक्षौतावादी भाव का प्रतीक है। राजा वर्मा ने रवि वर्मा को तंजौर पेंटिंग्स, स्कीमैटिक पारंपरिक कला और यूरोपीयन आर्ट में प्रशिक्षित किया। छपाई उत्पादन के औपनिवेशिक शासन उनके कार्यों के बढ़ावा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विक्टोरियन सैलून आर्ट के तर्ज पर वर्मा द्वारा ऐतिहासिक पेंटिंग्स ने भारतीय महाकाव्यों और साहित्यिक शास्त्रों को जीवंत बना दिया। उनके पेंटिंग्स ने सुंदरता के विचार को अमर बना दिया-विचार जो फेरला और गुणसियों के उत्कर्ष पर आधारित था। विक्टोरियन आर्ट की श्वेत और श्याम प्रस्तुति वर्मा के लिए प्रेरणादायी थी। फिर भी, उनका आखिरी समय का कार्य भारतीय राज-दरबारियों के वातावरण को ही प्रकाश में लाती है

पारंपरिक तौर पर, 1922 भारत आधुनिक कला आंदोलन के आगमन वर्ष के रूप में जाना जाता है। आधुनिक कलाकार हमेशा राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित “सांस्कृतिक एकता” और “अलगाव के आधुनिक पर्याय” के बीच के तनाव में थे। कला में आधुनिकतावाद के युग में रवीन्द्रनाथ टैगोर और अम ता शेरगिल का वर्चस्व था। भारतीय कलाकारों के लिए आधुनिकता क्यूबिज्म का पर्यायवाची थी-पर ऐसी तकनीक जो विश्व भर के कलाकारों की पसंदीदा तकनीक थी।

टैगोर का यूरोपीयन अवांत-गार्द से संबंध अनुकरण के किसी रूप में समान नहीं था परंतु इसे कलात्मक मौलिकतावाद या आदिवाद के समानांतर का आंदोलन के रूप में देखा गया। उनके कार्यों व्यक्तिगतता कहीं से भी गायब नहीं है। टैगोर के कार्य की तुलना प्रायः Adlf Holzel ds Jugendstil Illustration से की जाती है। अम ता शेरगिल की उदार पारिवारिक पृष्ठभूमि और यूरोप के विशिष्ट कला विद्यालयों से प्राप्त प्रशिक्षण ने उसे जीवन के बेहतरीन चीजों को परखने में सहायता प्रदान की। Grand Chamiere और Ecoles des Beaux-Arts जैसे प्रतिष्ठित आर्ट्स स्कूलों से प्रशिक्षण के बाद, शेरगिल अपने जन्म-भूमि भारत से कुछ पैदा करने के इराई से वापस लौट आई। अपने गुरु Lucien Simon और Paul Cizanne और Paul Gauguia के कार्यों से चित्रकला की प्रेरणा के साथ, शेरगिल यूरोप में शासन कर रहे कला के क्षेत्रों की कार्य प्रणाली और गंभीर ज्ञान लेकर भारत लौटी। ढंनहनपद जैपजपंद के पेंटिंग्स द्वारा जाग त युवा साहस ने शेरगिल को भारत के मूक और अव्यक्त हिस्से को चित्रित करने के कलात्मक श्रृंखला को चलाया। उसका मोटा “Textural style” हंगेरियन कलाकारों में प्रभावी Neue Sorchli-Chkeit आंदोलन के साथ निकट संबंध रखता है।

8.6.2 शिल्प

भारत में शिल्प की समृद्ध परंपरा रही है। हालाँकि यह परंपरा बढ़ती विक्टोरियन प्रभाव की गहराई में बसा हुआ था। शिल्प के साथ-साथ सौंदर्यवाद के प्रचलन का सबसे बुरा चरण औपनिवेशिक शासन में आया। समृद्ध विरासत शिल्प के सुस्त अकादमिक रुचि के विक्टोरियन मिजाज को नष्ट करने में असफल रहा। आधुनिक पेंटिंग्स में भारतीय अतीत के पुर्नजीवन से अलग, भारतीय शिल्प यूरोपीय अकादमिक शैली के प्रति ज्यादा वफादार रहा। 1902 में, दिल्ली दरबार प्रद र्नी में जी.के. म्हात्रे को ‘To the temple’ संगमरमर कार्य के लिए विजेता घोषित किया गया। उस समय जब भारतीय चिन्कार यूरोपीयन अकादमी से देशी कला के लिए पलायन कर रहे थे, भारतीय शिल्प अपनी असली पायदान पर थी। शिल्प का निर्माण, यूरोपीय उच्च मध्य वर्ग द्वारा संरक्षित, धार्मिक पूर्ति का स्थान नहीं रह गया था। बल्कि शहरी वातावरण से भरा था। बॉम्बे, एक प्रमुख व्यापारिक शहर, ‘माइनर कैनोवाड़’ के लिए गढ़ समझा जाता था, जो भारतीय शिल्प के क्षेत्र पर शासन करते थे। घरेलू परिस्थिति ने औपचारिक तस्वीरों और संपूर्णता में शिल्प को जगह दी मगर जल्द ही बड़े और मजबूत मुद्रा के चित्रों ने महत्वाकांक्षी शिल्प को और भी बड़ी जगह प्रदान की। इसलिए, इसने कामुक निर्वस्त्र, मुश्किल चित्र, फटेहाली में भिखारी और झुर्रीदार बूढ़े आदमी जैसा विस्तृत फलक प्रदान किया। म्हात्रे और वी.वी. तालीम के कार्य उभरते हुए अकादमिकों के लिए प्रेरणा के समान थी। फणीन्द्रनाथ बोस और डी.पी. राय चौधरी पर रोडीन के प्रभाव ने भारतीय शिल्प को एक नए विकास के क्षेत्र की ओर ले गया। रोडीन बोस के संपर्क में थे और उन्हें सराहा भी। उनके पुराने कार्य मुम्बई के अकादमिक शैली के शिल्प की तरफ इंगित करता है। कांसे के छोटी आ ति का कार्य जीवंत यथार्थवाद का

प्रतीक है और आज भी 19वीं शताब्दी के महत्वपूर्ण रचनाओं के रूप में माना जाता है। “Triumph of Labour and Martyr” का स्मारक रॉडीन की उत्कृष्ट रचना “Burhas of Calai” पर आधारित, राय चौधरी द्वारा उसके बड़ी आतिनुमा स्मारक की महत्वकांक्षा को जीवंत बनाती है। यह मुख्य रूप से आजादी के बाद की बात है, प्लास्टीस्टी, अंदरूनी संरचना और प्राण के यूरोपीय अवधारणा ने शिल्प कला के नए शुरुआत में जोश का संचार किया।

8.6.3 स्थापत्य

पुर्तगाली, डच, डेनिश, फ्रेंच और ब्रिटिश के क्रमिक उपनिवेश ने भारतीय और यूरोपीयन स्थापत्य शैली के महत्वपूर्ण उत्कर्ष को सामने लाया। ग्रामीण भारत के विपरीत, औपनिवेशिक स्थापत्य ने शहरी भारत के स्थानों को प्रभावित किया। यीतू और सत्य समीक्षा ने उप-महाद्वीप में इसाईयत को सुदृढ़ बनाने के लिए गोवा का दौरा किया। आइबेरियन भूभाग के मैनरिस्ट और बारूक जैसे मशहूर शैली के चर्चों का गोवा में उद्घाटन किया गया। सजावटी हिन्दू मंदिरों के निकटस्थ बारूक चर्च के उच्च कोटि के सजावट ने भारतीयों को कला के पुरातन रूप से संबंध बढ़ाने की ओर अग्रसर किया। 16वीं शताब्दी का महारू इटालियन वास्तुशास्त्र जैकोपो विग्नोला पुर्तगालियों द्वारा भारतीयों से परिचित कराए गए थे। इसके अलावा, गोवा में चर्च वास्तुशास्त्र और विग्नोला का सरल सम्मिश्रण है। प्लासी युद्ध की जीत के बाद, ब्रिटिश बंदरगाहों के शहर से भारतीय अंदरूनी क्षेत्रों की तरफ आने लगे। ईस्ट इंडियन कंपनी द्वारा निर्मित भवन भारतीय बिल्डरों की सहायता से यूरोपीय अकादमिक स्थापत्य रचना के आधार पर बनाया गया था। भारतीय और यूरोपीय संस्कृति के लगातार संपर्क से भिन्न-भिन्न स्थापत्य रूप पैदा हुए।

8.7 सारांश

इस इकाई में, हमने भारतीय साहित्य और संस्कृति में यूरोपीय साहित्य और संस्कृति की ग्रहणीयता की चर्चा की है। भले ही, भारतीय संस्कृति का प्रत्येक पहलू यूरोपीय संस्कृति से प्रभावित या अनुकूल है, हमने, इस इकाई में, भारतीय साहित्यिक और कलात्मक मनोदशा पर यूरोपीयन साहित्य और अन्य कला रूपों की ग्राह्यता पर ध्यान केंद्रित किया है। हमने भारतीय भाषाओं में यूरोपीय साहित्य के समृद्ध परंपरा की चर्चा की है। हमने यूरोपीय साहित्यिक अंशों के भारतीयकरण की प्रक्रिया की भी चर्चा की है। उसके बाद, भारतीय अंग्रेजी साहित्य की चर्चा रचना के अनोखे क्षेत्र के परिणामस्वरूप की गई है जो यूरोपीय संस्कृति के फलस्वरूप आरंभ हुआ है। इस चर्चा के बाद भारतीय कला के विभिन्न क्षेत्रों पर यूरोपीय संस्कृति के प्रभाव के ऊपर संक्षिप्त चर्चा की गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप भारतीय संस्कृति पर यूरोपीय प्रभाव के सामान्य परंपरा के साथ-साथ महत्वपूर्ण विशेष उदाहरणों को समझ सकेंगे।

8.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. रोमांटिसिज्म के मुख्य विशेषताओं की सूची बनाइए।
2. यथार्थवादियों और प्राकृतिक वैज्ञानिकों के बीच मुख्य अंतरों की सूची बनाइए।
3. आधुनिक यूरोपीयन ड्रामा की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं?
4. शेक्सपीयर के भारतीयकरण के कम-से-कम चार उदाहरण दीजिए।
5. भारतीय अंग्रेजी लेखन के पहले चरण के दो उदाहरण की सूची बनाएँ।

8.9 शब्दावली

8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इकाई 9 अनुवाद और धार्मिक आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 भारतीय धार्मिक परंपराओं में अनुवाद और व्याख्याएँ
 - 9.2.1 मध्यकालीन भारत में धार्मिक आंदोलन और अनुवाद : एक अतिपर्यावलोकन/ दृष्टिकोण
 - 9.2.1 भारतीय भाषाओं में धर्मग्रंथों और महाकाव्यों का अनुवाद
- 9.3 अनुवाद और इसाई मिशनरियाँ
- 9.4 अनुवाद और आधुनिक भारतीय धार्मिक आंदोलन
 - 9.4.1 अनुवाद और ब्रह्म आंदोलन
 - 9.4.2 रामकृष्ण मिशन और अनुवाद
 - 9.4.3 इस्कॉन आंदोलन और अनुवाद
 - 9.4.4 गुरु ग्रंथ साहित्य, कुरान और अवेस्ता का अनुवाद
- 9.5 अन्योन्य-प्रजातिगत भाषांतर और धार्मिक आंदोलन
- 9.6 सारांश
- 9.7 अभ्यास के लिए प्रश्न
- 9.8 शब्दावली
- 9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप :

- भारतीय धार्मिक प्रणाली/व्यवस्था में अनुवाद और व्याख्या की भूमिका समझेंगे;
- भारत में अनुवाद की गति को प्रभावित करने वाले प्रमुख धार्मिक आंदोलनों की सूची बना सकेंगे;
- भारत में धार्मिक आंदोलन के विभिन्न सोपानों/चरणों में अधिकतम अनूदित ग्रंथों की सूची बनाएंगे;
- धार्मिक ग्रंथों के अनु-सृजनात्मकता के समकालीन रूप।

9.1 परिचय

महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद और व्याख्या हमेशा से विभिन्न धार्मिक आंदोलनों के अभिन्न अंग रहे हैं। इसाईयत या क्रिश्चनैटि का विस्तार नए भाषाओं में हो रहे बाइबिल के अनुवादों से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। भारत भी धार्मिक उथल-पुथल के विभिन्न चरणों के दौरान, पवित्र ग्रंथों के अनुवाद और व्याख्या के विस्तार का सबूत रहा है। वस्तुतः, कई आधुनिक भारतीय भाषाओं का साहित्यिक इतिहास धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद के जरिए ही अपनी ऊँचाई पर पहुँचा है। इस तरह के अधिकतर मामलों में, अनुवाद मुख्यतः अनु-सृजनात्मकता में प्रतिफलित हुआ। इस इकाई में, हम ऐसे कुछ उदाहरणों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। एक लचीले कालक्रम विधि में, हम विभिन्न धार्मिक आंदोलनों की चर्चा करेंगे जिससे भारत में अनुवाद विकसित हुआ है। यह चर्चा मध्यकालीन भारत में धार्मिक आंदोलनों से प्रेरित अनुवाद और व्याख्या की परंपरा पर संक्षिप्त दृष्टि डालते हुए शुरू होगी। इसके बाद आधुनिक भारत में अनुवाद और धार्मिक आंदोलनों पर चर्चा होगी। यह इकाई इस संक्षिप्त चर्चा पर समाप्त होगी कि कैसे समकालीन परिदृश्य में भी ग्रंथों का अनुवाद धार्मिक प्रचार-प्रसार का हिस्सा रहा है। यह खंड

संकर-जातीय अनुसूचकों के विभिन्न रूपों जो नए तकनीकों के परिणाम स्वरूप विकसित हुआ है कि भी जाँच करेगा।

9.2 भारतीय धार्मिक परंपराओं में अनुवाद और व्याख्याएँ

9.2.1 मध्यकालीन भारत में धार्मिक आंदोलन और अनुवाद : एक अतिपर्यावलोकन/दृष्टिकोण

हिन्दू धर्म, बुद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म और इस्लाम धर्म जैसे प्रमुख धर्मों ने भारत में भक्तिपूर्ण विचारों, आदर्शों और सिद्धांतों को फैलाने में मुख्य रूप से अपना योगदान दिया है। इससे भारत के भाषाओं और साहित्यों में आध्यात्मिक आयाम भी जुड़ा है। अधिकतर आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखने की शुरुआत उपनिषदों, भगवद्गीता, रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों के दार्शनिक और धार्मिक ज्ञान से हुई जिससे संस्कृत भाषा, जो हिन्दू धर्म की पवित्र भाषा थी जिसमें उनके सारे मूल ग्रंथ रचे गए थे, का ज्ञान न रखने वालों तक भी धार्मिक विचार पहुँचाया जाए। इस तरह के साहित्यिक कार्यों की भाषा साधारण है और स्थानीय बोलचाल में प्रयुक्त मुहावरों के अनुरूप मिलती है। वास्तव में यह आंदोलन साहित्य को अभिजात्य वर्ग से आम जनता के दायरे में लाने की थी। अधिकतर भारतीय भाषाओं में, चाहे वे इंडो-आर्यन हो या द्रविड़ियन, प्राचीनतम शास्त्रीय ग्रंथ या तो अनुवाद या महाकाव्यों के स्वतंत्र भाष्य हैं। तमिल में कंबन रामायण (9वीं शताब्दी) और अवधि हिन्दी में तुलसीदास रचित रामचरितमानस (16वीं शताब्दी) इस परंपरा के कुछ उदाहरण हैं। भारत की तीन हजार पुरानी साहित्य की परंपरा वैदिक रूप में निर्मित वैदिक गीतों/लोकोत्तरों से शुरू हुआ जिसे बाद में संस्कृत कहा गया। वैदिक साहित्य, गद्य और पद्य दोनों की रचना की गई जो ब्राह्मण विद्वानों द्वारा फैलाई गई और इस साहित्य पर धार्मिक पवित्रता की नीति के अंतर्गत कड़ाई से एकाधिकार भी स्थापित किया गया। सांस्कृतिक समावेशन की प्रक्रिया जिसने प्राचीन भारत के इतिहास का उल्लेख किया ने भी उपर्युक्त एकाधिकार को नहीं हटा सकी।

हालाँकि, हिन्दू धर्म मध्यकालीन समय में बहुत बड़े परिवर्तन के दौर से गुजरा। महान देवों और जटिल प्रथाएँ भावुक और उत्साहपूर्ण भक्ति के माध्यम से एक भगवान वाली प्रथा में बदली। कीर्तन से भरा हुआ भक्तिपूर्ण धर्म, आत्म समर्पण और ईश्वर के प्रति परमानंद के गीत के रूपों में नई भक्ति ने लोगों के बीच समानता और भाईचारे के विचारों को बढ़ावा दिया। वास्तव में, आधुनिक भारतीय देशी भाषाओं के साहित्य का विकास इस धार्मिक-सह-सामाजिक आंदोलन से काफी प्रभावित था। इस अवधि के दौरान ग्रंथों के अनुवाद में काफी तेजी आई ब्राह्मणों द्वारा शासित सामाजिक-परंपरावादी क्रम पूरी तरह से कम तो नहीं हुआ था, लेकिन आध्यात्मिक प्रभुत्व के मामले उनकी महत्ता को भक्तिकाल के संतों द्वारा सफलतापूर्वक एक चुनौती दी गई थी जिनके गीत और संतचरित साहित्य नए धार्मिक ग्रंथ सिद्ध हुए।

भक्ति आंदोलन के परिणामस्वरूप, संस्कृत भागवत पुराण पूरे भारत में फैल गया और बाद में लोगों के रोजमर्रा की भाषाओं में उसका अनुवाद किया गया। मराठी में ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वर भागवत पर एक टिप्पणी थी जो देसी भाषाओं के प्रयोग से आधारभूत ग्रंथ का उदाहरण बनी। भक्तिकाल का अधिकतर वैष्णव साहित्य पुराणों और भगवद् गीता जैसे महाकाव्यों के अनुवादों या भाष्यों या व्याख्याओं से परिपूर्ण है। भक्ति आंदोलन के अलावा, नया इस्लामी शासन ने भी ब्राह्मणवादी एकाधिकार को एक प्रकार से कमजोर बनाने में बढ़ावा दिया। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में एक प्रमुख शक्ति के रूप में इस्लाम के उद्भव ने धार्मिक जनसंख्या सबसे बड़ी चुनौती का सामना कर रहा था। ब्राह्मणवादी परंपरा के कुछ अनुयायियों ने पारंपरिक धार्मिक विश्वासों से जुड़ने के लिए राजी करने की आवश्यकता भी महसूस की। सहमति के इस रूप के कारण, वे संस्कृत ग्रंथों और महाकाव्यों के अनुवाद नहीं किए जाने के ब्राह्मणवादी आदेशों का विरोध किया और इन ग्रंथों का अनुवाद भी किया। इस परंपरा ने हिन्दू ग्रंथों और महाकाव्यों के कई आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद में महत्वपूर्ण योगदान निभाया।

उपर्युक्त वर्णित आंदोलनों के परिणामस्वरूप लगभग सारे भारतीय भाषाओं ने अनुवाद के धनी परंपरा की शुरुआत का अनुभव किया। तमिल में महाभारत का अनुवाद 10वीं शताब्दी और तेलुगु में 11वीं शताब्दी में सामने आया। तेलुगु में रामायण का अनुवाद 11वीं शताब्दी और तमिल में 12वीं शताब्दी में की गई। भक्ति आंदोलन के परिणामस्वरूप भगवत पुराण का कई भाषाओं में अनुवाद किया गया। यह तेलुगु और बांग्ला में 15वीं शताब्दी,

ब्रज और फारसी में 16वीं शताब्दी, मराठी में लगभग 16वीं शताब्दी गुजराती और मलयालम में 17वीं शताब्दी और हिन्दी में 19वीं शताब्दी में सामने आई। 14वीं शताब्दी के दूसरे दशक के माधव पंथ के संत विष्णुपुरी ने भगवत में सबसे बेहतर उक्तियों का चयन किया और उसे प्रासंगिक विषयों के अनुसार तेरह समूहों में व्यवस्थित किया। इन प्रत्येक समूहों को उसने रत्नों की माला कहा और पूरे को भक्तिरत्नावली या भक्ति रत्नों का हार (छमबासंबम वी ठीजप ळमते) भगवत् भक्ति का सबसे अच्छा परिचय। 15वीं शताब्दी के शुरुआत ही में इसका लौरिया कृष्णा दास ने बांग्ला में अनुवाद किया। इनमें से अधिकतर अनुवाद, अनुवाद के बदले सृजनात्मक भाव हैं क्योंकि वे स्वतंत्रतापूर्वक वास्तविक कथाओं को छोड़ देते हैं या घटनाओं में परिवर्तन कर देते हैं और मामलों में वे स्थानीय और प्रादेशिक आस्वादन के लिए नए चीजों को डाल देते हैं इस प्रकार, प्रत्येक प्रदेश ने अलग-अलग धार्मिक, सामाजिक और सौंदर्य के आयामों के साथ अपने-अपने महाकाव्यों को विकसित किया।

यहाँ हमें धार्मिक आंदोलन द्वारा प्रेरित अनुवाद की दूसरी परंपरा का भी उल्लेख करना चाहिए। महान मुगल शासक अकबर ने, धर्मों के बीच शांति और मैत्री की स्थापना के उत्साह में सारे धर्मों के एक सार्वभौमिक तत्वों की तलाश में था। इसलिए, उसने विभिन्न धर्मों के पवित्र ग्रंथों को फारसी में अनुवाद करने के लिए बहुत बड़े अनुवाद विभाग की स्थापना की। इस प्रकार, इस काल के दौरान अथर्व वेद, रामायण, महाभारत और गीता का अनुवाद किया गया। उसके मृत्युपर्यंत भी अनुवाद कार्य जारी रहा। अब्दुर रहमान चिती ने अपने मीरातुल-मुखलुकात में ब्रह्मांड विज्ञान के हिन्दूवादी सिद्धांतों को डाला और भगवत् गीता का इस्लामी व्याख्या भी प्रदान किया; दारा शिकोह ने 52 उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया। मध्यकालीन युग के दौरान, इसाई और इस्लामी ग्रंथों का भी अनुवाद किया गया। अकबर ने बाइबिल और कुरान के फारसी अनुवादों को बढ़ाया। उसके काल में शायद पहली बार कुरान का फारसी में अनुवाद किया गया। जैसा सूफीवाद भारत के कई प्रदेशों में फैला, सूफी ग्रंथों का भी अनुवाद किया गया। सईद अलावल द्वारा मलिक मुहम्मद जायसी की अवध रचित 'पद्मावत' का अनुवाद बांग्ला में किया। इस्लाम के विस्तार ने फारसी और अरबी के फैलाव को प्रभावित किया। अरबी और फारसी साहित्य और धार्मिक ग्रंथों ने इस विस्तार को आगे बढ़ाया। निजामी समरकंदी का फारसी साहित्य कर्म 'हफ्ता पायकर', निजामी समरकंदी का फारसी साहित्य 'स्कंदरनामा', शेख युसुफ देहलवी का फारसी साहित्य 'तुप्तनेसा' का अनुवाद बांग्ला सहित कई भारतीय भाषाओं में किया गया। बांग्ला में, अब्दुल नवी ने 'दास्ताने-अमीर-हम्जा' का अनुवाद, अब्दुलाह ने अरबी से 'नसीयतनामा', ऐनुद्दीन ने अरबी साहित्य 'तपसी हुसैनी और फुहुतुहरम अजीज' का अनुवाद किया।

जैसा कि गोवा में मध्यकालीन युग में इसाईयत का विस्तार हुआ, इसाईयत के प्रचार-प्रसार के लिए कई सारे इसाई ग्रंथों का कोंकणी में अनुवाद किया गया। अपने धार्मिक विस्तार के प्रसार में इसाई लोग इतने ईमानदार थे कि 1576 ई. में पोप पायस पंचम ने पुर्तगाल के राजा का निर्देश दिया कि कोई भी व्यक्ति बिना कोंकणी भाषा के ज्ञान के बिना चर्च का पुजारी न बनाया जाए। कई इसाई धर्म के ग्रंथों का कोंकणी में अनुवाद किया गया। फ्रांसिस्कनस ऑर्डर के अमादेर दे संत अन्ना ने कैस्टिलियन से फ्लोस सैंकटोरम का अनुवाद, जोआओं दे सैम मथियास ने लैटिन क्लासिक सिम्बोलम फिदेइ का अनुवाद, जोआओं दे पेद्रोसा ने बर्नानदियों दे विलेगास के साहित्य सोलोलोक्वियस डिविनोस का अनुवाद किया। हम बाइबिल और अन्य ग्रंथों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद में इसाई मिशनरियों की भूमिका की जाँच पड़ताल अलग खंड में करेंगे।

9.2.2 भारतीय भाषाओं में धर्मग्रंथों और महाकाव्यों का अनुवाद

जैसाकि हम पिछले खंड में बता चुके हैं, मध्यकालीन युग के दौरान बड़ी संख्या में ग्रंथों का अनुवाद किया गया था। एक ही भाषा में कई अनुवाद हुए थे। हालाँकि, इस सारे अनुवादों के विस्तृत वर्णन में कई खंडों की आवश्यकता होगी, अगला खंड कई भारतीय भाषाओं के वास्तविक अनुवादों का एक संक्षिप्त परिचय देता है।

असमिया

शंकरदेव द्वारा चलाया गया भक्ति आंदोलन ने संस्कृत ग्रंथों को असमिया में अनुवाद किए जाने की धनी परंपरा को प्रेरित किया। शंकरदेव ने भगवत् पुराण के 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 और 9वें खंडों का अनुवाद किया। उसने भक्तों के समूह को भगवत् पुराण के अलग-अलग अध्यायों का अनुवाद करने को कहा। उनमें अनंत कंदाली, गोपाल चरण, द्विज, कल्पचंद्र, विष्णुभारती, रत्नाकर मिश्रा, श्री चंद्रदेव अनिरुद्ध कायस्थ और हरि थे। शंकरदेव

एक सर्जनात्मक अनुवादक थे, जिनके अनुवादों ने असमिया कविता को नई ऊँचाई दी। उनके शिष्य, माधवदेव ने विष्णुपुरी संन्यासी के भक्ति-रत्नावली का अनुवाद किया। शंकरदेव के निर्देशन में, उसने वाल्मीकी रामायण के आदि कांड का भी असमिया में अनुवाद किया। अनंत कंदाली ने भगवत पुराण के दसवें सर्ग के अंतिम खंडों का भी अनुवाद किया। उसने माही-रावण वर्ध, हरि-हर युद्ध और कुमार हरण का भी अनुवाद किया। दूसरा भक्त सर्वभौमा भट्टाचार्य ने भगवत पुराण, पद्म पुराण और भविष्यत् पुराण के कुछ अंशों का अनुवाद किया। कल्पचंद्र ने भागवत पुराण के कुछ हिस्सों का अनुवाद किया। बैकुंडनाथ भट्टाचार्य या भट्टदेव ने भागवत पुराण और श्रीमद् भगवद्गीता का अनुवाद असमिया गद्य में किया। राम सरस्वती ने महाभारत के बड़े हिस्से का अनुवाद किया। महाभारत के कई पर्वों का अनुवाद गोपीनाथ पाठक, विद्या पंचानन, गोपीनाथ और दामोदर, कंसारी कायस्थ, दामोदर दास, जय नारायण, लक्ष्मीनाथ द्विज और गंगादास, सुबुद्धि राय और भवानीदास द्वारा किया गया। भक्ति आंदोलन द्वारा प्रेरित इन अनुवादों ने आम आदमी के साहित्यिक पसंद को और असमिया भाषा के शैलीगत सफलताओं को नया रूप दिया।

बांग्ला

मध्यकालीन बांग्ला भी अनुवादों के आधिक्य/अधिकता का गवाह/प्रमाण है। यह तत्कालीन इस्लामिक विस्तार के कारण हिन्दू धर्म के अनुयायियों में भारी मात्र में कमी के रूप में हिन्दू धार्मिक सक्रियता के हिस्से के रूप में प्रारंभ हुआ। कृतिवास ने रामायण का अनुवाद किया। काशीराम दास ने महाभारत का अनुवाद किया। कविन्द्र परमेश्वर, संजय और श्रीकर्नाडी ने महाभारत या इसके हिस्से का अनुवाद किया, ना कि धार्मिक जागृति के रूप में। मालाधर बसु ने भागवत पुराण के 10 वें और 11वें सर्ग का अनुवाद किया। तुरंत ही अनुवाद की इस परंपरा ने चैतन्य देव के भक्ति जागरण से ऊर्जा प्राप्त की जिसका परिणाम अनुवाद ग्रंथों के खजानों के रूप में प्राप्त हुआ। द्विज गंगानारायण, गुणराज खान, घन याम दास, भवानीदास, द्विज लक्ष्मण, रमाशंकर और रामानंद घोष इत्यादि ने रामायण या रामायण के अन्य सर्गों का अनुवाद किया। कृष्ण, कविशेखर, अभिरामदास, शंकर चक्रवर्ती, परुराम, शंकर कपिचंद्र, बलराम दास और द्विज रामनाथ इत्यादि ने भगवत पुराण के अन्य हिस्सों का अनुवाद किया। जगताराम और रामप्रसाद ने अद्भुत रामायण का अनुवाद किया। नंदराम, द्वैतराम दास, कविचंद्र, गंगादास सेन ने महाभारत के हिस्सों का अनुवाद किया।

कन्नड़

कन्नड़ में न सिर्फ रामायण और महाभारत की अनुवाद की परंपरा है, इसके पास जैन विरासत के कुछ अनोखे ग्रंथ या महाकाव्य ग्रंथों का जैन रूपांतर भी है। पंपा, कन्नड़ साहित्य के रत्न त्रयों में से एक चर्चित, ने महाभारत का अनुवाद किया। पंपा द्वारा महाभारत का अनुवाद आधुनिक भारतीय भाषाओं में महाभारत का सबसे पहला अनुवाद है। पंपा का विक्रमार्जुनियम महाकाव्य का जैन भाषांतर है। कुमारव्यास ने महाभारत का अनुवाद कर्नात भारत कथामंजरी के नाम से किया; लक्ष्मीशा ने जैमिनी भारत का अनुवाद किया, कुमारवाल्मीकी ने रामायण का अनुवाद किया, थिम्मान कवि ने कृष्णराज भारत लिखा जिससे कुमारव्यास द्वारा छूटे गए हिस्सों को पूरा किया गया; सत्वा ने महाभारत के जैन रूपांतर का निर्माण किया; नागचंद्र ने रामायण का अनुवाद किया जिसके बाद जैन रामायण और विमला सुरी का पौमा चरिया का अनुवाद हुआ।

कश्मीरी

हालांकि सूफीवाद से प्रेरित साहित्यिक रचनाओं के कारण कश्मीरी भाषा शोषित हुई, हमारे पास कुछ प्रमाण है कि भक्ति आंदोलन ने हिन्दू धार्मिक ग्रंथों के कश्मीरी में अनुवाद में योगदान भी दिया। साहिब कौल ने भगवत पुराण, वैष्णव आंदोलन का महत्वपूर्ण ग्रंथ, के दसवें सर्ग का भाषांतर किया।

कोंकणी

कोंकणी का साहित्यिक इतिहास भी हिन्दू महाकाव्यों के अनुवाद से समृद्ध हुआ। कृष्णदास शामा केलोसिकर और उनके सहयोगी जैसे त्रिणुदास नामा, नामदेव, चंगा निवृत्ति दास और सुखा इंद्रा ने रामायण और महाभारत के हिस्सों का अनुवाद किया। ये महाभारत और रामायण के हिस्से ब्रगा, पुर्तगाल के जन पुस्तकालय में पाया गया। महाभारत के इस अनुवाद की अद्भुत विशेषता यह है कि यह गद्य में है।

मलयालम

मलयालम में, इजुत्ताचन ने अध्यात्म रामायण और महाभारत का अनुवाद किया। पूनथानम नामपुतरि का नूतेतू हरि भागवत के दसवें सर्ग का सारांश है।

मणिपुरी

मणिपुरी के पास वैष्णव आंदोलन की समृद्ध परंपरा है। भक्ति ग्रंथों के मणिपुरी अनुवाद का एक रोचक पहलू यह है कि अधिकतर अनुवाद बांग्ला ग्रंथों से किया गया था। राजा गरीबनवाज के संरक्षण में जिसने पूरे साम्राज्य को वैष्णव मत की ओर अग्रसर किया, हिन्दू काव्यों और भागवत पुराणों का संस्कृत और बांग्ला से बहुत सारे अनुवाद और भाषांतर मणिपुरी में किए गए। अंगम गोपी ने बांग्ला से कृतिवास का अनुवाद किया। गंगादास सेन के महाभारत के बांग्ला अनुवाद से कुछ सर्गों का अनुवाद मणिपुरी में किया गया था।

मराठी

मराठी में, तुकाराम का मंत्र गीता, गीता का अभंग रूप में किया गया अनुवाद है। कवि रामदास ने दुकांडी रामायण की रचना की।

नेपाली

नेपाली में भी अनुवाद की समृद्ध परंपरा रही है। इंदिरा ने श्रीमद् भगवद्गीता के दसवें सर्ग; बसंत शर्मा ने महाभारत; रघुनाथ भट्ट ने अध्यात्म रामायण और भानुभक्त ने रामायण का अनुवाद किया।

उड़ीसा

उड़ीसा में, सरला ने महाभारत, रामायण और चंडी पुराण का अनुवाद किया। हालाँकि अनुवाद के बाद के कार्यों में धार्मिक भक्ति आंदोलन की अभिव्यक्ति थी। बलराम दास ने गीता; भगवत का दसवाँ सर्ग और रामायण, जगन्नाथ दास ने भगवत पुराण; हलधर दास, गोपाल तेलंगा, सूर्यमणि छरू पटनायक ने अध्यात्म रामायण; निलांबर दास ने जैमिनी भारत; कृष्णा सिंह ने महाभारत, दीनबंधु खनंग और कृष्ण चरन पटनायक ने भागवत का अनुवाद किया।

तमिल

तमिल कवि कंबन द्वारा अनूदित रामायण महाकाव्यों के भाषांतरों में से सबसे अच्छा कार्य माना जाता है। तमिल में, महाकाव्यों के अनुवाद के अलावा शाक्त ग्रंथों का भी अनुवाद किया गया। एक तरफ कविराज पंडितार ने आदि शंकराचार्य के सौंदर्यलहरी का अनुवाद किया; विलुपुलुर ने महाभारत का अनुवाद किया।

तेलुगु

तेलुगु के साहित्य इतिहास में भी अनुवाद की समृद्ध परंपरा है। नान्या ने महाभारत के हिस्सों का; कोनाबुद्धा रेड्डी ने रामायण का अनुवाद, तिकन्ना ने रामायण के उत्तरकांड का अनुवाद, तिकन्ना ने महाभारत का भी अनुवाद; येराप्रगदा ने महाभारत का अनुवाद, पोटना ने श्रीमद् भागवद्गीता का अनुवाद किया।

हमें ध्यान देना चाहिए कि जब उपर्युक्त खंड महाकाव्यों और दूसरे अन्य ग्रंथों के सीधे अनुवाद के बारे में बताया है; कई भाषाओं ने भी समानांतर शैली विकसित की थी जिसमें उपर्युक्त वर्णित महाकाव्यों और ग्रंथों से स्वतंत्र भाषांतर किया गया। मलयालम भाषा में कथकली से संबंधित काव्य रचना में रामायण, महाभारत और भगवत का स्रोत के रूप में मुख्य रूप से इस्तेमाल हुआ है; मराठी और तमिल में टीका परंपरा महाकाव्यों और पुराणों के अनुसृजन के अनोखे प्रयोग को दर्शाता है; महिला पंडित रचित मराठी वर्णनात्मक कविताएँ महाभारत और रामायण के कहानियों पर आधारित हैं; राजस्थानी रसों में विस्तृत रूप से महाकाव्यों के कहानी प्रयोग मिलता है; संस्कृत और देशी या वर्नाकुलर भाषा के संयोग से मलयालम और तमिल में विकसित, मणिप्रवला, ऐसे भाषांतरों का एका आरंभन विधि था। अनुवाद के इतिहासकार अब ऐसे कार्यों पर अनुवाद की परंपरा और भारत में धार्मिक ग्रंथों के भाषांतरों को समझते हुए गंभीरता से विचार कर रहे हैं।

9.3 अनुवाद और इसाई मिशनरियाँ

दिसंबर, 1955 ई. को प्रधानमंत्री नेहरू ने लोकसभा की अध्यक्षता करते हुए घोषणा किया कि इसाईयत एक धर्म के रूप में इंग्लैंड, पुर्तगाल और स्पेन जैसे देशों में जाने से पहले भारत में अपनी जड़ों को पाया। नेहरू सेंट टॉमस, यीशु मसीह के एक शिष्य, जो भारत के उत्तर-पश्चिम भागों में बसे और उपदेश देते माने जाते हैं, के संदर्भ में बोल रहे थे। सेंट टॉमस समुद्र का रास्ता तय करते हुए केरल में मालाबार तट पर पहुँचे जहाँ वे कई लोगों को इसाईयत में परिवर्तन कराने के बाद काली के पुजारी द्वारा मारे गए। शताब्दियों बाद, एदेसा के एक धर्माध्यक्ष, दूदसे टॉमस के नेतृत्व में सीरियन इसाइयों के एक समूह का मालाबार में आगमन भारतीय इसाईयत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय को जोड़ती है। चूँकि पहली कहानी को पुष्ट करने के कोई पुख्ता प्रमाण नहीं है, इतिहासकारों ने एदेसा के ही थॉमस को सेंट टॉमस माना है और भारत में इसाईयत के संस्थापक होने का श्रेय भी दिया है। पुर्तगाल के अवधि के पहले समय-समय पर भारत आने वाले साधू-सन्ध्यासी के बारे में बहुत ही कम जानकारी प्राप्त है। वास्को-द-गामा द्वारा व्यापारिक रास्ते की खोज ने इसाई मिशनरियों के लिए भारत का रास्ता खोल दिया है। हालाँकि 1452 में गोवा में यीशु की घटना, फ्रांसीस्को जेवियर के पहले विकास की गति बहुत धीमी थी। फ्रांसीस्को जेवियर हजारों भारतीयों को परिवर्तन कराने में सफल थे। हालाँकि उनका प्रभाव गोवा के ही आसपास के क्षेत्रों तक सीमित था और भारत के दूसरे हिस्से पर कोई प्रभाव नहीं डाला। रॉबर्टो दि नोबिली एक यीशु ने उच्च जाति के हिन्दुओं और भारतीय स्थितियों की एक पूरी पहचान का प्रयोग को अंजाम दिया।

भारत में यूरोपीयन आगमन का पहला प्रमुख उद्देश्य व्यापार था। 17वीं शताब्दी तक, भारतीय भूभाग में अंग्रेजी, फ्रांसीसी, डच, पुर्तगाली और डेनिश व्यापार के क्षेत्रों में बँट चुका था। मिशनरियाँ भी भारत में आईं, कभी ऐसे कुछ व्यापारियों के साथ कभी स्वयं ही। कुछ आलोचकों का मत है कि इसाई मिशनरियों ने भारतीय जनता को आंग्ल बनाकर ब्रिटिश सरकार की सहायता की। हालाँकि कुछ हद तक यह सच हो सकता है, मगर ब्रिटिश सरकार और मिशनरियों के बीच के संबंधों पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा। इतिहास बताता है कि वे दोनों एक दूसरे देखना तक नहीं चाहते थे। कुछ मिशनरियों का व्यक्तिगत इतिहास ऐसे संबंध के बारे में कई उदाहरण पेश करते हैं विलियम केरी जैसी मिशनरियाँ डेनिश क्षेत्र के सेरामपुर में अंग्रेजी सरकार के बुरे बर्ताव के कारण रहते थे।

सेरामपुर के अलावा, ट्रांक्वेबार इसाई द्वारा किए गए अनुवाद के प्रकाशन का एक महत्वपूर्ण केंद्र बना। नए टेस्टामेंट का तमिल अनुवाद अकेले जिगनबाग ने किया। भारत में किताब के शक्ल में छपने वाली यह सबसे पहला बाइबिल का कार्य था। ट्रांक्वेबार प्रेस के कुछ उल्लेखनीय मुद्रित किताबें हैं :

ए डाक्ट्रिना क्रिस्टा	: 1712
वेद शास्त्रम, नोट इम्पार्टिंग ऑफ विस्डम	: 1718
फर्स्ट पार्ट ऑफ द होली बुक	: 1719
बुक ऑफ सांग्स ऑफ डिवाइन विस्डम	: 1723
सेकेंड एंड थर्ड पार्ट ऑफ ओल्ड टेस्टामेंट	: 1724-28
द होली बाइबिल-ओल्ड टेस्टामेंट	: 1796

(जिगनबाग और बेंजामिन शल्ज द्वारा अनूदित)

डेनिश मिशनरियाँ बार्थोलोमियस जिगनबाग और हेनरिक पलच्छाऊ 9 जुलाई, 1706 को ट्रांक्वेबार पहुँचे और 1750 में इसाई क्रेडरिक स्वार्टज पहुँचे। उनके प्रयास अंग्रेज मिशनरियों विलियम केरी और जॉन टॉमस के आगमन से सुदृढ़ हुआ जो 1793 में बंगाल पहुँचे थे। इसाईयत के विस्तार की बड़ी अवधि भारत में 1858 में शुरू हुआ, जब ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन 1858 में अपने हाथों में ले लिया। कई देशों के इसाई भारत में मिशनरी के रूप में आए और 50 वर्षों में भारत के बड़े भागों में उनकी प्रथा अपनी जड़े जमा चुका था। उनके धार्मिक प्रचार-प्रसार में अनुवाद सबसे शक्तिशाली माध्यम साबित हुआ। जैसा कि इसाई धर्म के प्रति लोगों को आकर्षित करने के लिए बाइबिल का अनुवाद लगभग सभी भारतीय भाषाओं में कर चुके हैं, साथ ही उन्होंने हिन्दू धर्म और

इस्लाम धर्मों के ग्रंथों का भी अनुवाद उनके अनुयायियों को इन धर्मों के अंदर व्यप्त बुराइयों को दिखाने के लिए कर चुके थे। उदाहरण के लिए, इसाई ग्रंथों के अतिरिक्त, विलियम केरी रामायण का अनुवाद बंगाली में कर चुके थे।

डैनियल पॉट्स के अनुसार, देशी भाषाओं में बाइबिल की आवश्यकता भारतीय को झूठे शास्त्र के बदले सच्चे शास्त्रों को देने के लिए थी। बार्थोलोमियस जिगनबाग ने इस आवश्यकता को पहचाना और हाथों से बाइबिल के अंशों का लिप्यंतरण किया जो बहुत ही लंबी और जटिल प्रक्रिया थी। बहुत सहमति लेने के बाद, जिगनबाग 1712 ई. में ट्रॉनक्वेबार में छापाखाना की स्थापना करने में सफल हो सके। दूसरा डेनमार्क निवासी, बेंजामिन शल्ज 1721 में बाइबिल को तमिल में अनुवाद करने में सफल हो चुका था। अपने मद्रास निवास के दौरान, उसने न्यू टेस्टामेंट, गारडेन ऑफ पैराडाइज, टु किश्चियैनिटी और अन्य छोटे कार्यों का तेलुगु में अनुवाद किया। 18वीं शताब्दी के अंत तक दक्षिण में पुर्तगालियों, डेनमार्क, ब्रिटिश और फ्रेंच शासकों के पास भारत के क्षेत्र में उनके अपने छापाखानों हो चुके थे। विलियम केरी, जो हुआ मार्शमैन और विलियम वार्ड ने बाइबिल को भारत के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करने के इरादे से सेरामपुर में छापाखाना की स्थापना की।

बाइबिल के चिरकाल से असंख्य अनुवाद हो चुके हैं। बाइबिल के मूल अंग हिब्रू भाषा में थे। अंग्रेज बाइबिल के लैटिन संस्करण का प्रयोग करते थे जिसे वल्गेट कहा जाता है। छापेखाने के आगमन के साथ अंग्रेजों ने अंग्रेजी भाषा में बाइबिल के कई संस्करणों को लाया। बाइबिल का सबसे मशहूर संस्करण किंग जेम्स बाइबिल था। जिसे 1611 ई. में छापा गया था। बाइबिल के अनुवाद में मिशनरियों ने कई समस्याओं का सामना किया होगा। इसमें पहले प्रकार का तथ्य कि बाइबिल की सार्वभौमिक सम्मत ग्रंथ कि किसी भाषा से अनुवाद हो; दूसरा किसी अनुवाद के लिए संपूर्ण विश्वसनीयता, बाइबिल सहित इसे प्राप्त करना असंभव है। बाइबिल का सारे लोगों तक पहुँच पाने का बस एक ही कारण है कि जिसने बाइबिल को पढ़ा, उसने इसे अनुवाद में पढ़ा।

9.4 अनुवाद और आधुनिक भारतीय धार्मिक आंदोलन

9.4.1 अनुवाद और ब्रह्म आंदोलन

उन्नीसवीं शताब्दी नए भारत के विकास का सबूत है। इस शताब्दी का पहला दशक यूरोपीय व्यापारियों और मिशनरियों द्वारा नई सभ्यताओं के आगमन का सबूत है। भारतीयों को नई दुनिया दिखाई गई, एक ऐसी दुनिया जिसमें धर्मनिरपेक्ष व्यक्तिगतता, स्वतंत्रता और सार्वभौमिक भाईचारे के आदर्श को सम्मान दिया गया। भारतीयों में से एक नया वर्ग उभरकर बाहर आया जो भारतीय भूमि पर इन आदर्शों का प्रोण करना चाहते थे। राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज ऐसे आदर्शों के लिए अग्रगामी आंदोलन था। राजा राममोहन राय ने नए नए आदर्श की अवधारणा बनाई जो पश्चिम और भारतीय विचारों के उदारवादी आदर्शों को जगह देगी। इसके अंग के रूप में, उसने उपनिषदों का अनुवाद बांग्ला में किया। उसने 'वेदांत सार' भी प्रकाशित किया जो बांग्ला में वेदों के सार थे। इस प्रकार के बाद, वेदों के अनुवादता पर लोक बहस छिड़ गया। परंपरावादियों ने राममोहन राय को इस आधार पर हमला किया कि ब्राह्मणवादी हिन्दुत्व ने वेदों का देशी भाषा में अनुवाद करने की सम्मति की नहीं दी थी। राममोहन राय ने तर्क दिया कि नए युग की यह माँग है कि धार्मिक ग्रंथों का प्रसार लोगों की भाषा में की जाए। इस प्रकार उसने आधुनिक युग में मध्यकालीन अनुवादकों के प्रकृति को दर्शाया।

9.4.2 रामकृष्ण मिशन और अनुवाद

रामकृष्ण मिशन की स्थापना, रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानंद ने की थी। रामकृष्ण विवेकानंद ने उन्नीसवीं सदी के मानवतावादी स्वभाव के संदर्भ में नव-हिन्दुत्ववाद के आगमन का नेतृत्व किया। रामकृष्ण मिशन ने धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद परंपरा को जारी रखा है। मिशन ने संस्कृत ग्रंथों जैसे, अध्यात्म रामायण, भगवद्गीता (कई भाषाओं में), ब्रह्मासूत्र, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, सुंदरकांड, जोगवशिष्ट, उद्धव गीता, शंकरभाष्य और तिरुमुलुरु का तमिल ग्रंथ तिरुमंतराम का अनुवाद किया है।

9.4.3 इस्कॉन आंदोलन और अनुवाद

इस्कॉन आंदोलन, भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुवाद द्वारा प्रेरित एक नवभक्ति आंदोलन ने समकालीन दुनिया में धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद की परंपरा को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है। इसके संस्थापक, भक्तिवेदांत ने कई संस्कृत और बंगाली ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। इनमें गीता, श्रीमद् भागवत्, चैतन्य चरितामृत, इशोपनिषद्, मुकुंद-माला-स्रोत्र, नारद-भक्ति सूच इत्यादि शामिल हैं।

9.4.4 गुरु ग्रंथ साहिब, कुरान और अवेस्ता का अनुवाद

आधुनिक युग में धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद जारी है। गुरु ग्रंथ साहिब, सिक्खों का धार्मिक ग्रंथ का अनुवाद हिन्दी और अंग्रेजी में हो चुका है। पारसियों ने अपने पवित्र किताब का अनुवाद गुजराती में किया है। कुरान भी कई भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुका है। यह एक उल्लेखनीय बात है कि हिन्दू-ग्रंथों की तरह, कुरान को भी अननूद्य घोषित किया गया था। यहाँ कमाल अतातुर्फ को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा जब उसने कुरान के तुर्की अनुवाद करवाने की कोशिश की थी। हालाँकि, भारतीय उपमहाद्वीप में कुरान के अनुवाद को नहीं रोका जा सका। शाह उलिउल्लाह देहलवी ने कुरान का फारसी में अनुवाद 1738 में; शाह रफीउद्दीन ने कुरान का हिन्दुस्तानी में अनुवाद 1776 और शाह अब्दुल कादिर ने 1790 में कुरान का उर्दू में अनुवाद किया। मिर्जा काज़िम अली ने 1802 में कुरान का उर्दू में; राजेंद्रनाथ मिश्रा ने कुरान के हिस्सों का बांग्ला में अनुवाद 1879 और गिरी चंद्र सेन ने 1881 ई. में बांग्ला में कुरान का अनुवाद किया। यह एक रोचक तथ्य है कि ना तो राजेंद्रनाथ मिश्रा और ना ही गिरीश चंद्र सेन इस्लाम के अनुयायी थे। वास्तव में गिरीश चंद्र सेन ब्रह्म समाज के पूजनीय नेता थे। उन्हें अनुवाद की प्रेरणा ब्रह्म समाज के उदारवादी धार्मिक आदर्शों से मिली।

9.5 अन्योन्य-प्रजातिगत भाषांतर और धार्मिक आंदोलन

भारतीय धर्मों ने हमेशा से धार्मिक विचारों के संचरण में विभिन्न तरीके स्वीकार किए हैं। दूसरे शैली में माध्यम से ग्रंथों को संचरण हुआ। नई तकनीकों के उद्भव के साथ संचरण की पद्धतियों में भी काफी विस्तार हुआ है। इस खंड में हम धार्मिक ग्रंथों के अनु-प्रजातिगत भाषांतरों पर चर्चा करेंगे।

ऐसा कहा जाता है कि शक्तिशाली भाष्य परंपरा की उपस्थिति और अनुपस्थिति, मौजूद सभ्यता में विचार और विमर्श की स्वतंत्रता की सीमा और विस्तार की एक सूची है। भारत में, एक लंबी और नियमित भाष्य परंपरा रही है जिसने प्राप्तकर्ता और अप्राप्तकर्ता समूहों के बीच विचारों और अभिव्यक्ति के मेल-मिलाप और संचरण की स्थिति को दर्शाया।

भारत में कला उत्पत्ति में धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जहाँ शास्त्रीय भारतीय कलाओं के कई कार्य भारतीय सभ्यता के महाकाव्य में धार्मिक-ऐतिहासिक विषयों पर मंदिरों में निर्माण किए गए हैं। इसके कुछ उदाहरण कंदरीया का हिन्दू मंदिर, खजुराहो, मध्यप्रदेश राधा और कृष्णा का कांगरा पेंटिंग्स, हिमाचल प्रदेश है। इसी तरह, बौद्धों और जैनों ने भी महाराष्ट्र में अजंता, एलारा और एलिफैंटा के गुफाओं में गुफा मंदिर, शिल्प और चित्रकारी का निर्माण किया। यह धार्मिक विचारों और ग्रंथों के अन्यान्य प्रजाति संचरण के उदाहरण हैं। अन्योन्य प्रजाति अनुवाद के दूसरे रूप भी हैं :

- रामायण और महाभारत की कहानियाँ दूसरे विभिन्न शैलियों द्वारा भी अपनाई गई है। शैली का एक बड़े हिस्से में जिससे रामायण और महाभारत की कहानियाँ फैली है लिखित रूप के अलावा कहानी कथन की मौखिक परंपरा, यात्र और ग्रामीण नाटकों की लोक और ग्रामीण परंपरा और प्रोसिनियम थिएटर शामिल हैं। तकनीकों के विकास के साथ बढ़ते हुए, इनका रूपांतर कहानी की किताबों, बच्चों की हास्य किताबों और फिल्मों में हो चुका है। इन कहानियों में मौलिक संघर्ष और विवाद निर्माणकर्ता के विचारों के अनुरूप विभिन्न मौजूद प्रदत्त और धारक के शैली की मुख्य विशेषताओं के साथ स्वतंत्र रूप में समावेशन के कारण होता है। रामायण, महाभारत, भागवत और बाइबिल की कहानियों पर बनी फिल्मों को ऐसे भाषांतर के प्रतिनिधि उदाहरण के तार पर देखा जा सकता है। युगनिर्धारक कार्यक्रम जैसे रामायण, महाभारत, कृष्णा ने एक

उदाहरण पेश किया है कि कैसे निर्माणकर्ता-दर्शक-शैली की जटिलता अन्योन्य प्रजाति प्रस्तुतीकरण में ग्रंथों की नए संस्करण निर्माण में एक माध्यम की भूमिका अदा की है।

अन्योन्य प्रजाति भाषांतर की यह प्रक्रिया एक सतत् प्रक्रिया है जो तकनीक के प्रत्येक विकास के साथ नवीनीकृत होती रहती है। हम यहाँ धार्मिक ग्रंथों के अनु-प्रजाति संचरण के कुछ उदाहरण को देख सकते हैं।

- अमर चित्र कथा जिसे 1976 में शुरू किया गया था महान महाकाव्यों, मिथकों, किंवदंतियों, इतिहास, साहित्य और मौखिक लोक कथाओं इत्यादि से भारतीय कहानियों के दृश्यनुमा पुनर्विष्कार का पर्याय है। यह उपभोग के लिए हिन्दी, मराठी, तेलुगु, गुजराती, कन्नड़, असमिया और बांग्ला में उपलब्ध करवाया जाता है।
- धार्मिक ग्रंथ ई-कॉमिक्स के रूप में भी प्रसारित किए जाते हैं हिन्दी में मीराबाई, गुजराती में भीष्म, तेलुगु में नारद की कहानियाँ और अंग्रेजी में 'द लार्ड ऑफ लंका' मशहूर कॉमिक सीरीज़ है।
- चंदामामा जिसे 1947 में स्थापित किया गया था वह बी. नाग रेड्डी और चक्रपाणि का दिमाग का उपज है। भारत की समृद्ध परंपरा से संबंधित नौजवानों को मनोरंजन और शिक्षित करने के उद्देश्य से शुरू किया गया था। चंदामामा मिथकों और धार्मिक कथाओं खूबसूरत रूपांतरों को देता है। यह 13 भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है।
- छोटा भीम (The Little Bhim) और उसके साथियों का ढोलकपुरी की काल्पनिक मिथकीय धरती, प्राचीन भारत का एक साम्राज्य, पर बना एक 2D एनीमेटेड जोखिम भरी कहानी है। यह महाभारत के एक काल्पनिक पात्र भीम से लिया गया है परंतु यह अपनी विशिष्ट शैली और बच्चों जैसा बचपना को बनाए रखता है।
- एनीमेटेड सीरीयलों की वर्तमान प्रस्तुति जहाँ छोटा भीम और छोटा कृष्णा एक साथ आ रहे हैं अन्योन्य-प्रजाति अनुवाद और भाषांतरों के संदर्भ में जाँच किए जाने योग्य है।
- विभिन्न धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद इंटरनेट के जरिए संचरण के लिए किया जाता है। ऐसे कुछ अनुवाद निम्नांकित हैं :
 1. गुरु ग्रंथ साहिब का अनुवाद : www.gurugranthsahib.guru.dwara.net/;
www.srigurugranth.org/
 2. हिन्दी, बांग्ला में कुरान का अनुवाद : [www.aquran.com](http://www.aquran.com;); [www.quranhindi.com](http://www.quranhindi.com;);
www.banglakitab.com/quran.html
 3. उर्दू में बाइबिल का अनुवाद : <http://www.urdubible.net/bible.html>
 4. मलयालम में उपनिषद् का अनुवाद : www.mediafire.com/?mezigmyly4g
 5. मराठी में श्रीमद्भवत्गीता का अनुवाद : download.yatharthgeeta.com/pdf/Marathi-geeta/index.KTM
 6. पारसी ग्रंथों का अनुवाद : <http://www.avesta.org/>

9.6 सारांश

धार्मिक आंदोलनों ने भारत में अनुवाद के इतिहास में सीधे रूप में योगदान दिया है। आधुनिक भारतीय भाषाएँ अपने विकास के क्षणों में इन अनुवादों के प्रति ऋणी हैं। आधुनिक युग ने भी धार्मिक आंदोलनों द्वारा प्रेरित अनुवादों की निरंतरता का सबूत पेश किया है। ग्रंथ भले ही बदल गए हैं, परंतु अनुवाद की परंपरा समाप्त नहीं हुई है। नए तकनीकों के आने से, धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद और रूपांतरों में नए आयाम पाए गए हैं। उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि मध्यकालीन युग से अतिआधुनिक युग तक, धर्म ने अनुवाद के इतिहास में महत्वपूर्ण और प्रेरक की भूमिका अदा की है।

9.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. आधुनिक भारतीय भाषाओं में धर्मशास्त्रों और महाकाव्यों के बड़े पैमाने पर अनुवाद में प्रथम धार्मिक गतिविधियों की चर्चा करें।
 2. भारतीय भाषाओं में रामायण और महाभारत के अनुवाद पर एक तुलनात्मक लेख लिखें।
 3. भारतीय अनुवाद साहित्य को समृद्ध बनाने में इसाई मिशनरियों पर एक लेख लिखें।
 4. आधुनिक युग के दौरान विभिन्न धार्मिक आंदोलन के रूप में अनुवाद की प्रकृति पर एक लेख लिखें।
 5. धार्मिक ग्रंथों के अन्योन्य-प्रजाति अनुवाद और भाषांतरों के प्रकृति पर एक लेख लिखें।
-

9.8 शब्दावली

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इकाई 10 अनुवाद और सामाजिक सुधार के आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 आधुनिक भारत में सामाजिक सुधार पर चर्चा
- 10.3 अनुवाद और सामाजिक सुधार आंदोलन
 - 10.3.1 शैक्षिक सामग्री का अनुवाद
 - 10.3.2 आधुनिक यूरोपीय राजनीतिक दर्शन का अनुवाद
 - 10.3.3 अनुवाद और भारतीय संस्कृति का प्रभाव
- 10.4 अनुवाद और प्रतिरोध की राजनीति
- 10.5 सारांश
- 10.6 अभ्यास के लिए प्रश्न
- 10.6 शब्दावली
- 10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

यह इकाई पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे :

- कैसे अनुवाद ने आधुनिक भारत में प्राचीन ग्रंथों की पुनर्व्याख्या में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई;
- कैसे अनुवाद ने आधुनिक भारत के सामाजिक सुधार में पश्चिमी ज्ञान के प्रयोग को सुगम बनाया;
- अनुवाद ने किस प्रकार पौराणिक विमर्श द्वारा भारत की छवि के निर्माण में भूमिका निभाई और उसने उपनिवेशवाद के विरुद्ध राजनीतिक प्रतिरोध की प्रक्रिया को किस तरह प्रभावित किया?

10.1 प्रस्तावना

अब तक हम यह सीख चुके हैं कि अनुवाद किसी स्रोत भाषा से किसी अन्य लक्ष्य भाषा में मात्र भाषांतर की साधारण प्रक्रिया नहीं है। अनुवाद कभी निरपेक्ष, भाषाई अभ्यास नहीं होता, जिसमें स्रोत भाषा में निहित अर्थ का विशुद्ध उत्पादन मात्र होता हो। लक्ष्य भाषा के बहुत से कारक इस पर असर डालते हैं और अनुवाद की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, जिनमें वह पाठक वर्ग जिसे लक्ष्य करके अनुवाद किया गया हो या फिर विशुद्ध रूप से आर्थिक संबंध, जो अनुवाद के अर्थशास्त्र को नियंत्रित करने वाले तत्व आदि शामिल करते हैं।

इस इकाई में भारत में 19वीं शताब्दी में अनुवाद पर दृष्टि डाली जाएगी और हम यह देखेंगे कि अनुवाद की प्रक्रिया औपनिवेशिक काल में सामाजिक सुधार में कैसे शामिल हुई। इसके बाद, हम चार क्षेत्रों पर विचार-विमर्श करेंगे : 1) शैक्षिक सामग्री का अनुवाद, 2) आधुनिक यूरोपीय दर्शन का अनुवाद, 3) अनुवाद और भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास, संस्कृति, भाषा और साहित्य के अध्ययन का प्रभाव तथा 4) औपनिवेशिक काल में अनुवाद और प्रतिरोध की राजनीति। लेकिन इन विशिष्ट बिंदुओं पर आने से पहले यह आवश्यक है कि सामाजिक सुधार से जुड़ी कुछ चर्चाओं के बारे में जाना जाए।

10.2 आधुनिक भारत में सामाजिक सुधार के आंदोलन पर चर्चा

हम 19वीं शताब्दी में भारत के सामाजिक-सुधार के आंदोलनों से आरंभ करते हैं। सामाजिक सुधार के आंदोलन को कुछ विद्वानों के द्वारा भारतीय पुनर्जागरण भी कहा जाता है। भारतीय पुनर्जागरण का विचार विवादित मुद्दा रहा है, क्योंकि 19वीं शताब्दी में भारत में अधिकतर सांस्कृतिक जागृति का केंद्र बंगाल तक सीमित था। हालाँकि यह भी सच है कि भारत के अन्य कई हिस्सों और विभिन्न समुदायों में, उदाहरण के लिए पश्चिमी भारत की निम्न जातियों, उड़ीसा और मध्य भारत की जनजातियां भी सामाजिक सुधार की प्रक्रिया से गुजर रही थीं। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भारतीय पुनर्जागरण शास्त्रीय ज्ञान के पुनर्जीवित होने के अलावा सामाजिक सुधार के आंदोलन का भी काल है।

इसके अलावा हमें पुनर्जागरण से संबंधित एक और बात याद रखनी चाहिए कि किस पृष्ठभूमि में पुनर्जागरण से जुड़ी गतिविधियों के बारे में चर्चा की जा रही है?

19वीं शताब्दी में सामाजिक सुधार आंदोलन के पूर्ववर्ती काल को अक्सर अज्ञानता के काल या अंधकार के क्षेत्र ('एरिया ऑफ डार्कनेस') तथा ऐसे समाज के रूप में वर्णित किया जाता है जिसमें मूर्तिपूजा, सामाजिक कुरीतियों तथा अंधविश्वास बहुत गहराई तक व्याप्त थे। ऐसा कहा जाता है कि उस समय जाति प्रथा का सख्ती से पालन किया जाता था, जिसमें रीति-रिवाजों पर अनुचित जोर दिया जाता था। ब्राह्मण वर्ष विशेष में जन्म तथा धार्मिक आधार पर प्राचीन ग्रंथों पर आधिपत्य जमाकर अपना वर्चस्व कायम रखते थे और इन्हीं ग्रंथों पर उनका अस्तित्व कायम था। हालाँकि वे मुख्यतः न्यास और स्मृति ग्रंथों का ही अध्ययन करते थे, जबकि हिंदुओं के प्रमुख ग्रंथ वेद लगभग उपेक्षित ही थे। भारतीय पुनर्जागरण के अंतर्गत होने वाले परिवर्तनों को इन्हीं पृष्ठभूमियों में परखा गया।

जिस अवधि में भारत में ये सामाजिक सुधार के आंदोलन शुरू हुए, उसी दौरान इंग्लैंड में भी कई सुधार कार्यक्रम शुरू किए गए। एस. नटराजन के अनुसार, "भारत में सामाजिक सुधारों को अमूमन भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवारों को प्रभावित करने वाले परिवर्तनों के रूप में समझा जाता है, तथा इसका आर्थिक वर्गों के बीच के संबंधों को प्रभावित करने वाले परिवर्तनों से संबंध मामूली ही है, जबकि पश्चिमी देशों में समाज के विभिन्न आर्थिक वर्गों के संबंधों में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक सुधार आंदोलन का नाम दिया गया"। (थारू : 1992, पृष्ठ 150)

इस प्रकार, भारत में सामाजिक सुधार आंदोलन के अंतर्गत कुरीतियों तथा व्यर्थ सामाजिक रीति-रिवाजों एवं परंपराओं पर हमला करने एवं सुधारों को भारतीय जनमानस में अंतर्निहित करने, दोनों का कार्य किया गया। ये सामाजिक रीति-रिवाज एवं परंपराएं ही भारतीय समाज की पहचान की केंद्रबिंदु थीं और उसे पुनःपरिभाषित करने वाली थीं, जैसे-जातिगत भेदभाव, बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह आदि। भारत के सामाजिक सुधार आंदोलन में कहीं से भी वर्ग पर प्रश्नचिन्ह नहीं उठाए गए।

इस सामाजिक सुधार आंदोलन की एक और विशेषता यह भी थी कि भारत जैसे देश में सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों का एक-दूसरे से गहरा संबंध था, क्योंकि भारत में सामाजिक संबंध धर्म के आधार पर ही संचालित होते हैं तथा उन संबंधों को धर्म द्वारा ही वैधता मिलती है। इसलिए राजा राममोहन राय तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे सामाजिक सुधारकों ने सामाजिक सुधार आंदोलन को उचित ठहराने के लिए अक्सर धार्मिक ग्रंथों का ही उपयोग किया। हालाँकि 19वीं शताब्दी के मध्य तक पहले चरण में सामाजिक सुधार आंदोलन का संबंध सिर्फ धार्मिक पुनर्जागरण से ही नहीं, बल्कि आधुनिकीकरण से भी था। कई समाज सुधारकों ने आधुनिक ज्ञान एवं विज्ञान पर काफी जोर दिया। ईसाइयत के समानतावादी एवं मानवतावादी विचारधारा के साथ-साथ ज्ञानोदय का अंधविश्वासों, रुढ़िवाद एवं अमानवीय रीति-रिवाजों पर हमला कर उन्हें दूर करने के लिए प्रयोग किया गया था।

राजा राममोहन राय ने 1830 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। राय ने कुछ सामाजिक सुधारों को कानूनी मान्यता दिलाने के लिए ब्रिटिश सरकार का सहारा लिया तथा सती प्रथा को जड़ से समाप्त करने का प्रयास किया गया। 19वीं शताब्दी के 70वें दशक में अनेक संगठनों ने ब्रह्म समाज द्वारा शुरू किए गए कार्य को आगे बढ़ाया। लेकिन

इस दौरान इसमें कुछ प्रत्यक्ष परिवर्तन भी हुए। इन संगठनों ने सरकार द्वारा प्राप्त सुविधाओं एवं पश्चिमी ज्ञान की बजाय स्वप्रयास से सामाजिक सुधार पर जोर देना शुरू किया।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने लाहौर में 1871 में आर्य समाज की स्थापना की। दयानंद सरस्वती द्वारा 'वेदों की ओर लौटो' नारे के साथ शुरू किया गया सामाजिक आंदोलन भारत के मध्यवर्गीय शिक्षित हिंदुओं में काफी लोकप्रिय हुआ। इस समय तक ब्रह्म समाज द्वारा प्रचारित उदारवादी विचारधारा काफी हद तक समाप्त हो चुकी थी।

उपरोक्त चर्चा से यह बात तो स्पष्ट हो ही चुकी है कि भारतीय पुनर्जागरण को हम दो वर्गों में रख सकते हैं: 1. सुधारवादी और 2. परिवर्तनवादी। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज तथा अलीगढ़ आंदोलन को जहाँ सुधारवादी आंदोलन के रूप में समझा जा सकता है। ऐसा भी माना जाता है कि आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन एवं देवबंद आंदोलनों की प्रकृति परिवर्तनवादी थी। महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज के अलावा सत्य शोधक समाज जैसे अनेक संगठन शिक्षा के माध्यम से निचली जातियों के उत्थान के लिए कार्य कर रही थीं। सन् 1880 में थियोसॉफिकल सोसायटी की स्थापना हुई और इसने समाज सुधार आंदोलन में काफी योगदान दिया।

आइए, अब हम भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन का निरूपण करने से पहले इतिहास लेखन की कुछ प्रवृत्तियों पर नजर डालते हैं। राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के अंतर्गत भारतीय पुनर्जागरण का प्रस्तुतिकरण पारंपरिक, धार्मिक एवं वर्गीकृत समाज को आधुनिक, पंथनिरपेक्ष एवं प्रगतिवादी समाज में परिवर्तित करने के आंदोलन के रूप में किया गया है। इस प्रकार उन इतिहास लेखकों के लिए भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन का इतिहास एकरेखीय या एक ही दिशा में चलने वाला आंदोलन था। हालाँकि, वर्तमान आलोचनात्मक अध्ययनों में भारतीय पुनर्जागरण के इस तरह के निरूपण को सही नहीं माना जाता तथा भारतीय पुनर्जागरण एवं समाज सुधार आंदोलन के दूसरे पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो भारतीय पुनर्जागरण सिर्फ इस बारे में नहीं है कि उस समय समाज सुधार के लिए क्या नीतियाँ अपनाई गईं या समाज सुधार के लिए क्या कदम उठाए गए, बल्कि यह इस बारे में भी है कि इन नीतियों एवं कदमों के प्रति लोगों ने किस तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त की।

सुमित सरकार ने अपनी पुस्तक 'राइटिंग सोशल हिस्ट्री (1997)' में इन बातों का बहुत विस्तार से जिक्र किया है कि कैसे 19वीं शताब्दी को पुनर्जागरण आंदोलन काल के रूप में बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया। सामाजिक सुधार में लगे अधिकतर संस्थानों एवं पाश्चिम के समाज सुधार आंदोलनों से प्रेरित होकर किए गए सामाजिक सुधारों को भारतीय समाज के मूल तत्वों को नष्ट करने वाला कहकर उनकी आलोचना एवं अवमानना की गई थी। इस प्रकार यदि ऊँची जाति के बुद्धिजीवी हिंदू किशोरीचंद्र मित्र की नजर में यह आंदोलन उजाले की नई किरण लाने वाला था राजनारायण बासु नामक अध्यापक का आरोप है कि यह पारंपरिक व्यवस्था को भंग करने वाला था। बासु की प्रतिक्रिया ठीक उन्हीं प्रतिक्रियाओं की तरह है, जिनके अनुसार भारतीय पुनर्जागरण को 'कलयुग' लाने वाला माना गया। हिंदू परंपरा में समय की परिकल्पना के आधार पर कलयुग को सबसे भ्रष्ट समय माना गया है।

सामाजिक सुधार आंदोलन के अंतर्गत महिलाओं को शिक्षा देने की शुरुआत तथा जाति प्रथा पर किए गए प्रहार के कारण समाज में परिवर्तन आना शुरू हुआ, जिसके कारण भारतीय समाज का परंपरागत वर्गीकृत ढाँचा टूटने लगा। शिक्षित पत्नियाँ अपनी अवहेलना किए जाने का विरोध करने लगीं या रोजमर्रे के घरेलू काम करने से इंकार करने लगीं तथा निचली जाति के लोग ऊँची जाति के लोगों की प्रभुसत्ता को चुनौती देने के बारे में विचार करने लगे। पारंपरिक व्यवस्था में ये परिवर्तन कलयुग की संकल्पना के अनुरूप साबित हुईं तथा कलयुग के विचार ने सिद्धांत का रूप ले लिया। हालाँकि उदारवादी प्रभाव के कारण इसी कलयुग का स्वागत भी किया गया। इसलिए रसुंदरी देवी ने अपनी आत्मकथा 'आमार जीवन (1868)' में लिखा है, "भला हो, भला हो, इस कलयुग का" (सरकार द्वारा दिए गए संदर्भ से, 1997)।

निचली जातियों एवं स्त्री आंदोलनों पर केंद्रित नए अध्ययनों में, तर्क दिया गया है कि भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन पूर्णतः समावेशी नहीं था। इस आंदोलन के कुछ प्रमुख बिंदु थे: बाल विवाह, सती प्रथा, महिला शिक्षा और विधवा, पुनर्विवाह आदि। इस प्रकार पुनर्जागरण आंदोलन मुख्यतः स्त्रियों को केंद्र में रखकर संचालित हो रहा था। यहाँ हम पार्थ चटर्जी के लेखन को उदाहरणस्वरूप ले सकते हैं, जिसमें उन्होंने देश में उपनिवेशवाद के खिलाफ चले

संघर्ष के दो पहलुओं, भौतिक एवं आध्यात्मिक, की पहचान की है। चटर्जी के अनुसार, इस संघर्ष के भौतिक पहलू के अंतर्गत अर्थव्यवस्था एवं प्रशासनिक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को लेकर हुए संघर्ष आते हैं, जिसमें पश्चिमी देशों ने अपना प्रभुत्व साबित कर लिया था। दूसरी तरफ आध्यात्मिक पहलू के अंतर्गत देश के आंतरिक पहलू आते हैं, जिसमें देश की राष्ट्रीय संस्कृति ने अपने अस्तित्व को बचाए रखा। स्त्रीवादी व्याख्याओं में दिए गए तर्कों के अनुसार समाज सुधार आंदोलन को औपनिवेशिक शासन के अधीन शक्तिविहीन कर दिए गए पुरुषों द्वारा अपने आध्यात्मिक पहलू पर विजय पाने के रूप में व्याख्यायित किया गया है, जबकि यह आध्यात्मिक पहलू कभी औपनिवेशिक शासन द्वारा जीता ही नहीं गया।

ठीक इसी प्रकार निचली जातियों को केंद्र में रखकर किए गए अध्ययनों के अनुसार, ब्रह्म समाज के जिन उदारवादी आदर्शों के साथ सामाजिक सुधार आंदोलन की शुरुआत हुई थी, वह धीरे-धीरे कट्टर हिंदुत्ववाद में विघटित होती गई। इसके परिणामस्वरूप अछूतों के लिए समाज सुधार के कोई मायने नहीं रह गए तथा अछूतों की नजर में खुद की उन्नति की बजाय हिंदुत्व की भावना ही और प्रबल हुई। जिस समय ईसाई, इस्लाम एवं बौद्ध धर्मों की शुरुआत निचली जातियों या जाति व्यवस्था से भी बाहर कर दिए गए समाज को सम्मान दिलाने के लिए हो रही थी, उसी समय अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए अत्यंत कठोर हिंदू धर्म ने शुद्धिकरण परंपरा की शुरुआत करके अछूतों के लिए अपने दरवाजे खोल दिए। विजय प्रसाद ने अपनी पुस्तक, 'अनटचेबल फ्रीडम : सोशल हिस्ट्री ऑफ ए दलित कम्युनिटी' (2001) में इस विरोधाभास की चर्चा बहुत अच्छे ढंग से की है।

10.3 अनुवाद एवं सामाजिक सुधार आंदोलन

सामाजिक सुधार आंदोलन के बारे में इस संक्षिप्त जानकारी के बाद आइए अब अनुवाद और सामाजिक सुधार आंदोलन के बीच संबंधों के बारे में विचार करते हैं। आज हम जिसे 'बंगाल के पुनर्जागरण' के रूप में जानते हैं, वह वास्तव में मूलतः अनुवाद पर केंद्रित था। इसके अलावा अनुवाद के कारण सामाजिक सुधार आंदोलन की प्रक्रिया को जिन अन्य तरीकों से सहायता मिली, उस पर भी हम विचार करेंगे। इसके साथ-साथ समाज सुधार आंदोलन में प्राचीन ग्रंथों, विशेषकर धार्मिक पुस्तकों की पुनर्व्याख्या एवं पुनरान्वेषण भी हुआ। इस प्रक्रिया को प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद के जरिये न सिर्फ सहायता मिली बल्कि उन प्राचीन ग्रंथों का पुनरान्वेषण भी संभव हो सका। 19वीं शताब्दी में संस्कृत में लिपिबद्ध अनेक प्राचीन ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद हुआ, जिसकी शुरुआत राजा राममोहन राय से मानी जा सकती है। राय ने हिंदू धर्म की नए संदर्भ में पुनर्परिभाषित करने वाले अनेक ग्रंथों एवं पाठों के अनुवाद किए। उन्होंने सबसे पहले ब्राह्मण धर्मशास्त्र की आधिकारिक पुस्तक, 'वेदांत' का बांग्ला में अनुवाद किया, फिर उन्होंने इसका हिंदी और अंग्रेजी में भी अनुवाद किया। इसके साथ राय ने सामवेद से 'केना उपनिषद' तथा यजुर्वेद से 'ईशोपनिषद' का भी क्रमशः बांग्ला और अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसके बाद रसय ने 1819 में अथर्ववेद से 'मंडूक उपनिषद' तथा यजुर्वेद से 'कठोपनिषद' का अनुवाद किया। इन सभी में एक सर्वशक्तिमान 'ईश्वर' सत्ता को रेखांकित करने की कोशिश की गई। एकेश्वरवाद के इस विचार से मूर्तिपूजा का विरोध करने में सहायता मिली। इसमें कहा गया कि यदि ईश्वर एक ही है जो अपने प्रति श्रद्धा की माँग करता है तो ईश्वर के कई अवतारों एवं विभिन्न भगवानों की मूर्तियों की पूजा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि राय द्वारा प्राचीन धर्मग्रंथों की पुनर्व्याख्या कर दिए गए एकेश्वरवाद के विचार को उन्हीं के कई समकालीन विद्वानों ने चुनौती दी। उदाहरण के लिए डॉक्टर टाइटलर ने राममोहन राय पर 'ईसा मसीह के महान संदेशों' को वेदांत से व्याख्यायित करने का आरोप लगाया। इस पर राममोहन राय का जवाब था कि यहूदियों-इसाईयों के पवित्र ग्रंथ में दिए गए एकेश्वरवाद के संदेश की अपेक्षा वेदांत में दिया गया विचार कहीं ज्यादा महान है। बाइबिल में वर्णित ईश्वर के मानवीकृत स्वरूप की अपेक्षा वेदांत में वर्णित ईश्वर गुणविहीन हैं (कॉपफी : 1996, पृष्ठ 8-13)। हमारे लिए जो बात सबसे महत्वपूर्ण है, वह ये यह कि राय के अनुवाद में जिस एकेश्वरवाद के विचार को पुनःप्रतिपादित किया गया था, वह उसी एकेश्वरवाद की विचारधारा से प्रेरित था जिसने उस समय पश्चिम के धार्मिक सुधारकों को बेहद प्रभावित किया था। इस प्रकार न सिर्फ अनुवाद ने सामाजिक सुधार में जनचेतना लाने में अपना प्रभाव पैदा किया, बल्कि जिस सामाजिक परिस्थिति में ये अनुवाद किए गए उन परिस्थितियों ने उस अनुवाद को भी प्रभावित किया।

इन धार्मिक आधिकारिक पुस्तकों का अनुवाद करने के अलावा राय ने 1825 में अंग्रेजी के एक अन्य ग्रंथ, 'डिफरेंट मोड्स ऑफ वर्शिप' एवं सती प्रथा पर चल रही तत्कालीन विमर्शों की पुस्तक (ए कान्फ्रेंस ऑन 'द प्रैक्टिस ऑफ बर्निंग वुमेन अलाइव', 1818) भी बांग्ला से अंग्रेजी में अनुवाद किया। राय ने 1833 तक अनुवाद का यह कार्य जारी रखा और अति प्राचीन काल से ब्राह्मणों द्वारा पालन किए जाने वाले धर्मग्रंथों का भी अनुवाद किया (कोटनाला : 1975, पृष्ठ 210-215)।

राजा राममोहन राय का अनुसरण करते हुए 19वीं शताब्दी के आखिरी वर्षों में 1898-99 के बीच आर. सी. दत्त ने महाभारत एवं रामायण का अनुवाद किया। इसके अलावा उन्होंने ऋग्वेद एवं उपनिषदों का भी अनुवाद किया। दत्त द्वारा प्रतिष्ठित महान प्राचीन महाकाव्यों का अनुवाद किए जाने का संबंध निस्संदेह प्राचीन भारतीय सभ्यता की पुनर्स्थापना की राजनीति से था। वह अनुवाद कार्य का वर्णन करने के लिए अक्सर पुनर्प्रतिष्ठा के रूपक का संदर्भ देते थे। दत्त के अनुसार, अनुवादों में वास्तविक महाकाव्यों के प्रमुख पात्र एवं घटनाएँ उसी तरह रहती हैं तथा जिस विदेशी भाषा में वे अनूदित होती हैं, उसके विदेशी तत्वों की भरमार से अप्रभावित होती हैं। उपनिवेशकाल से ध्वंशावशेषों की खुदाई कर वस्तुओं को यूरोपीय संग्रहालयों में सजाने के लिए निकाला गया। इस प्रक्रिया में पुनरान्वेषण इस प्रकार किए गए कि उन्होंने प्राचीन महाकाव्यों को एकदम समय के अनुकूल बनाए रखा, जिसे उन्होंने आधुनिक समय की नब्ज कहा। इस प्रकार अपने अनुवाद की उन्होंने "जनता के उपाख्यानों में दब गए प्राचीन महाकाव्य के मूल स्वरूप को खोज निकालने तथा आधुनिक दुनिया के सामने पुनर्प्रतिष्ठा के रूप में व्याख्या की है" (पृष्ठ-164 में दिए गए संदर्भ से)। दत्त के अनुसार मूल ग्रंथों में काफी बदलाव कर उन्हें विस्तृत किया गया तथा ये अनुवाद लोकप्रिय मान्यताओं से काफी प्रभावित हुए। उनमें प्रासंगिक घटनाओं को बहुत अधिक मात्र में भर दिया गया और धार्मिक एवं उपदेशात्मक आख्यानों, महान व्यक्तियों, कथाओं एवं परंपराओं की असीमित भरमार कर दी गई। उन्होंने प्राचीन ग्रंथों के अपने अनुवाद में काफी बड़े असंबद्ध हिस्सों को हटा दिया क्योंकि वे मूल ग्रंथों के वही हिस्से प्रस्तुत करना चाहते थे, जिससे आधुनिक समाज खुद को जोड़ कर देख सके।

यहाँ यह बात जान लेना बहुत जरूरी है कि दत्त और उनके अनुवाद की प्रस्तावना लिखने वाले विद्वान मैक्समूलर का इस बात पर विशेष जोर था कि अनुवाद में वे बातें कतई नहीं जोड़नी चाहिए जो मूल ग्रंथ के लेखक ने न लिखी हों। एक तरह से उनके अनुवादों में मूल ग्रंथों के सार तत्व पेश करने की कोशिश ही दिखाई देती है। इसके अलावा उनके अनुवाद में मूल ग्रंथों में वर्णित भक्ति एवं आस्था के उच्च आदर्शों एवं असीम करुणा को विशेष रूप से व्याख्यायित किया गया, जिसके जरिये देशज परिस्थितियों एवं देश के साथ प्रेम को व्याख्यायित किया गया और इस सबने मिलकर उसे आधुनिक हिंदुत्व के अनुकूल बनाया। मूल तत्वों के प्रति इस लगाव से मूल की तलाश करने तथा अनुवाद के उद्देश्यों का पता चलता है। इस प्रकार दत्त द्वारा किए गए अनुवाद मूल महाकाव्यों के ऐसे आत्मसजग पुनर्लेखन के रूप में विकसित हुए जो सामाजिक सुधार आंदोलन की आधुनिक विचारधारा के अनुकूल साबित हुए। पहले अध्याय में देरीदा पर की गई हमारी बहसों के आधार पर हम यह जान चुके हैं कि देरीदा जैसे बाद के संरचनावादी सिद्धांतकारों ने मूल ग्रंथों एवं विचारों के प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया व्यक्त की। देरीदा के विचार में मूल कुछ भी नहीं है, इसलिए मूल की खोज करना व्यर्थ है। 19वीं सदी में भारत में हुए विभिन्न अनुवादों की इस सिद्धांत पर समीक्षा कर सकते हैं, जिनमें से अधिकांश का उद्देश्य भारत के प्राचीन मूल्यों या मूल तत्वों को पुनर्प्रतिष्ठित करना था।

इन सबके अलावा जैसा कि हमने ब्लॉक-2 की इकाई-6 में भी पढ़ा कि अमेरिकी एवं स्कॉटिश दोनों देशों की ईसाइयत का प्रचार करने वाली संस्थाओं ने हिंदू धर्म के अनेक प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रोजैलिंड-ओ-हैनलोन ने इस बात का उल्लेख किया है कि इसाइयों ने कैसे धर्मांतरण के लिए सीधे-सीधे इसाइयत के विचारों का गुणगान नहीं किया, बल्कि हिंदू धर्म के सामाजिक-धार्मिक परंपराओं में उनकी नजर में व्याप्त दोषों को उजागर किया। जॉन मूडर से लेकर जॉन विल्सन तक तथा स्कॉटलैंड के इसाई प्राचरक स्टीवेंसन से लेकर नेस्विट तक, सभी ने हिंदुत्व के अवगुणों को उजागर करने के लिए प्राचीन ग्रंथों का सुनियोजित अध्ययन किया। महाराष्ट्र में ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'ज्ञानोदय' में 1850 में जोसेफ एडिसन की पत्रिका 'स्पेक्टेटर' से प्राकृतिक धर्मशास्त्र एवं अन्य विषयों की सामग्री के मराठी में अनुवाद प्रकाशित हुए जिनमें विलियम

पैली की 'नैचुरल थियोलॉजी' तथा एम. गैलोडेट की 'ए युथ्स बुक ऑफ नैचुरल थियोलॉजी' शामिल थे। इन अनुवादों का प्रयोग मूर्तिपूजा एवं हिंदू धर्म के अंधविश्वासों के खिलाफ ईसाइयत को विवेकपूर्ण आस्था के रूप में स्थापित करने के लिए किया गया। हालांकि, इसमें कुछ स्वदेशी विद्वानों ने भी हस्तक्षेप किए। उदाहरण के लिए हिंदू धर्म पर किए गए हमलों के प्रत्युत्तर में मोरोभट दांडेकर ने 'द वेरीफिके इन ऑफ द हिंदू रिलिजन' लिखा तथा स्कूल अध्यापक नारायण राव ने विल्सन की 'एक्सपोजर ऑफ द हिंदू रिलिजन' का प्रत्युत्तर एक पैम्फलेट तैयार कर दिया। इन सभी पुस्तकों का अनुवाद हिंदी एवं बांग्ला भाषा में किया गया और पुनर्जागरण काल के दौरान जनमत तैयार करने में इस अनूदित साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद से हालांकि इस बात का खुलासा हुआ कि ब्राह्मणों के आधिपत्य का आधार धार्मिक ग्रंथों में वर्णित विचारों के आधार पर नहीं था। इसके बजाय उन ग्रंथों तक पहुंच में असमानता के कारण जाति प्रथा में ऊंच-नीच का विकास हुआ। हिंदू धर्म के पतनशील रीति-रिवाजों पर हमला करने के लिए वे अक्सर प्राचीन ग्रंथों का प्रयोग करते थे तथा उन प्राचीन मूल ग्रंथों में लिखे वर्णनों एवं व्यावहारिक तौर पर प्रयोग की जा रही परंपराओं में विषमता को उजागर करते थे। इससे एक तरह के लोकतंत्रीकरण की नींव पड़ी, जिसका बाद में भारतीय सुधारकों ने उपयुक्त तरीके से इस्तेमाल किया। हिंदू शास्त्रों से विलियम कैरी के संबंध ने भी राजा राममोहन राय को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। रोसेलिन हैन्लॉन के तर्क के अनुसार ज्योतिराव फुले जैसे समाज सुधारक इसी तरह के सांस्कृतिक परिवेश से पैदा हुए और जाति प्रथा पर उनके द्वारा किए गए अधिकतर हमले इस संदर्भ में प्रासंगिक थे।

सर सैयद अहमद खान ने अलीगढ़ आंदोलन के जरिये मुस्लिम समुदाय के आधुनिकीकरण की दिशा में समाज सुधार के लिए पहल की। बाइबिल का अध्ययन करने तथा उस पर एक टीका लिखने के अलावा, उन्होंने अपने संगठन 'द साइंटिफिक सोसायटी ऑफ अलीगढ़' के तहत कला एवं विज्ञान पर पश्चिम में लिखी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद भी किया। 19वीं शताब्दी का समय बौद्ध धर्म की पुनःव्याख्या एवं पुनःस्थापना के लिए भी जाना जाता है। शताब्दी की शुरुआत से ही भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं परंपरा के अध्ययन के अंतर्गत यूरोप के विद्वानों ने संस्कृत, पालि एवं तिब्बती के प्राचीन ग्रंथों का अनुवाद करना शुरू कर दिया था। एक अंग्रेज अधिकारी जेम्स प्रिंसेप ने 1837 में अशोक शिला एवं अशोक स्तंभ पर लिखी ब्राह्मी लिपि की व्याख्या की। हालांकि यह समय बौद्ध धर्म में फिर से बड़े उभार का समय था। अमेरिका के गृह युद्ध में हिस्सा ले चुके एक कर्नल एवं थियोसॉफिकल सोसायटी के संस्थापक सदस्यों में से एक हेनरी ओलकॉट बौद्ध धर्म को पुनःस्थापित करने के उद्देश्य से 1880 में सीलोन गए। सीलोन में थियोसॉफिकल सोसायटी के एक सदस्य डेविड हेवाविटामे ने बौद्ध धर्म को उभरते हुए विश्व धर्म के रूप में मान लिया था, इसलिए उन्होंने ने 1891 में बोध गया की यात्रा की। इन प्रयासों से भारत में बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान की प्रक्रिया को एक नई ऊंचाई प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप कलकत्ता में महाबोधि सोसायटी की स्थापना हुई।

19वीं शताब्दी में 80 के दशक के बाद बौद्ध धर्म के ग्रंथों के अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में खूब अनुवाद हुए। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं परंपरा के अध्ययन की प्रक्रिया से प्रभावित होकर भारतीय विद्वानों ने भारतीय विरासत के रूप में बौद्ध धर्म को गौरव के रूप में लिया। परिणामतः कलकत्ता में 1892 में बौद्ध ग्रंथ सोसायटी की स्थापना हुई। महाराष्ट्र में विद्वान इतिहासकार दामोदर धर्मानंद कोसाम्बी ने बौद्ध पालि ग्रंथों का न सिर्फ अनुवाद किया बल्कि बौद्ध धर्म पर उन्होंने मराठी में काफी लिखा। एलीएनॉर जीलियट ने अपने लेखन से बताया है कि कैसे अनेक भारतीय समाज सुधारकों ने हिंदू धर्म को खारिज किए बगैर खुद को बौद्ध धर्म से संबद्ध बताया। भारतीय विचारक भले ही बौद्ध धर्म को राष्ट्रीय विरासत मानकर उस पर गौरवान्वित हो रहे थे, लेकिन बौद्धों एवं हिंदुओं के बीच संबंध हमेशा मधुर ही नहीं थे। हिंदुत्ववादी बौद्ध धर्म को हिंदू धर्म के अंग के रूप में ही अपना रहे थे तथा महात्मा बुद्ध को विष्णु का अवतार बता रहे थे। बौद्ध धर्म के अंतर्गत दिए गए हिंसा न करने तथा जीवन का सम्मान करने के विचार को हिंदू धर्म के अंतर्गत अहिंसा एवं शाकाहार के विचार में परिवर्तित कर दिया गया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब निचली जाति के लोग धर्मांतरण कर दूसरे धर्मों, विशेषकर इस्लाम एवं इसाई धर्म, अपनाने लगे तो समाज सुधार के अधिकतर प्रयास बौद्ध धर्म के बढ़ते प्रभाव की जवाबी प्रतिक्रिया देने की आवश्यकता से प्रेरित थे।

10.3.1 शैक्षिक सामग्री का अनुवाद

पहले वर्णित अनुवाद के परिचय और इसके भारत में 19वीं शताब्दी में हुए सामाजिक-सुधार आंदोलन से संबंध के बाद, अब हम कुछ अन्य चर्चाओं पर भी गौर करेंगे, जिनसे इसका महत्वपूर्ण संबंध था। पहले हम शैक्षिक सामग्री के अनुवाद पर बात करेंगे। प्राचीन धर्मग्रंथों को फिर से प्रचारित करके जागरूकता लाने की प्रक्रिया के अलावा सामाजिक-सुधार आंदोलन में शिक्षा ने भी केंद्रीय भूमिका निभाई। उस समय शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रतिद्वंदी उदाहरणों की प्रकृति को समझने के लिए हमें आंग्लविदों और प्राच्यविदों के बीच मतभेदों और विवादों को जानना होगा। प्राच्यविदों का विश्वास था कि परंपरागत संस्कृति और ज्ञान को संरक्षित करना चाहिए और देशवासियों को बताना चाहिए। दूसरी तरफ आंग्लविद् भारत के सामाजिक स्वरूप को पश्चिमी सभ्यता के अनुरूप ढलना चाहते थे अंग्रेजी भाषा की महत्ता पर बल दिया था।

राजा राममोहन राय हिंदू धर्म को पुनर्जीवित करने के साथ-साथ अंग्रेजी की शिक्षा से परिचय और प्रसार का भी प्रयास कर रहे थे। डेविड हरे के सहयोग से उन्होंने अंग्रेजी विद्यालयों की स्थापना का प्रयास किया और अंततः सूरीपारा में वर्ष 1816-17 में एक एंग्लो-हिंदू स्कूल खोला गया। अंग्रेजी शिक्षा को देशवासियों में जागरूकता लाने के महत्वपूर्ण उपाय की तरह देखा जाने लगा। राजा राममोहन राय साफ तौर पर उस समय के उपयोगितावादी विचार के प्रभाव में थे और उनके लिए शिक्षा का अर्थ 'उपयोगी और लाभप्रद' ज्ञान से था।

लॉर्ड एमहर्स्ट को 1823 में लिखे एक पत्र में राय ने भारतीयों के संबंध में लिखा था 'विश्वसनीय अवसर पाने की उम्मीद जगाने के लिए यूरोपीय संभ्रात लोगों की तरह भारतवासियों को भी गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायन, शरीर रचना-विज्ञान और विज्ञान के अन्य लाभकारी विषयों के बारे में शिक्षा देना होगा।' जब दुनिया के सर्वाधिक उदार और पश्चिम के ज्ञानसंपन्न देशों द्वारा आधुनिक यूरोप की कला और विज्ञान को एशिया में किसी गौरवशाली महत्वाकांक्षा के साथ स्थापित करता देखकर वे भारत में ज्ञानोदय को आता देख रहे थे (कोटनाला, पेज 41)। यह 1826 में स्थापित हुए हिंदू कॉलेज द्वारा चलाए गए आंदोलन की प्रतिक्रिया के रूप में हो रहा था।

1820 से 1830 के दशक में बहुत सारे मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेज कलकत्ता, बम्बई, रुड़की आदि जगहों पर स्थापित किए गए। 1835 में मैकाले ने अपना प्रसिद्ध शैक्षिक प्रारूप जारी किया जिसे 'मैकाले मिनट्स' के नाम से जाना जाता है। इसमें उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा की अनिवार्यता पर जोर दिया गया था। इसके बाद 1854 में चार्ल्स वुड की विज्ञप्ति आई, जिसमें भारत में शिक्षा को यूरोपीय ज्ञान की तरफ ले जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया था। इस बीच, अनेक सरकारी स्कूल और प्रशिक्षण संस्थान स्थापित हो चुके थे। शिक्षा का प्रसार स्त्रियों, निम्न जातियों, मुस्लिम, निर्धन और पिछड़े तबके तक करने से न सिर्फ शिक्षा का स्वरूप लोकतांत्रिक बना, बल्कि यह धर्मनिरपेक्ष और उपयोगी भी बना।

19वीं शताब्दी के शुरुआती दौर से लेकर मध्य तक बंगाल में राजा राममोहन राय के नेतृत्व में 'स्कूल टेक्स्ट बुक सोसायटी' और 1820 में स्थापित 'स्कूल सोसायटी' के प्रयासों से वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों का बांग्ला भाषा में प्रचुर मात्र में अनुवाद हुआ। 'तत्व बोधिनी' (1840) और 'विविदार्थ शोग्रहो' (1850) पत्रिकाओं की भी इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस तरह, मैकाले द्वारा भारत में अंग्रेजी आधारित शिक्षा के प्रचार-प्रसार के प्रयास के बावजूद कई भारतीय विद्वानों ने भी भारतीय भाषाओं में ज्ञान के प्रसार के अनेक प्रयास किए। इस संबंध में ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा शुरू किए गए क्षेत्रीय विद्यालय उम्दा उदाहरण है। उनका मानना था कि गणित और खगोल विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी में देने की बजाय उसका अंग्रेजी से बांग्ला में अनुवाद कर देने से उसे कहीं अधिक प्रभाव गंती बनाया जा सकता है (सरकार : 1997)।

पश्चिमी भारत में 'बांबे एडुकेशनल सोसायटी' के सचिव बाल शास्त्री जांभेकर ने लॉर्ड ब्रोगम के 'ट्रीटिज ऑन द आब्जेक्ट्स, एडवांटेज एंड प्लेजर्स ऑफ साइंस' का मराठी में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने मूल अंग्रेजी से इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित और मनोविज्ञान का मराठी में अनुवाद किया। दिल्ली में मास्टर रामचंद्र ने भी काफी अनुवाद किए। जांभेकर की तरह ही उन्होंने भी क्षेत्रीय भाषा के जरिये विज्ञान को लोकप्रिय बनाया। 19वीं शताब्दी के विद्वानों द्वारा इसे पश्चिमी ज्ञान का भारतीयकरण कहा गया। इस प्रक्रिया में जांभेकर, रामचंद्र आदि विद्वान इसमें सम्मिलित थे। 'संवाद प्रभाकर', 'तत्व बोधिनी' और 'विविदार्थ संग्रह' जैसी शोध पत्रिकाएं इसी

उद्देश्य के तहत प्रकाशित हुई और उनका लक्ष्य एक तरह की संस्कृति का निर्माण करना था। एशियाटिक सोसायटी के सदस्य, राजेंद्रलाल मित्र ने अपनी एक योजना प्रस्तावित की थी जिसमें 'विज्ञान की यूरोपीय शब्दावली के क्षेत्रीय संस्करण तैयार करने' के जरिए 'पूर्णतः राष्ट्रीय और उसके श्रेष्ठ तत्व को सुरक्षित करने' के बारे में विचार किया (कुमार : 1996)।

19वीं शताब्दी में अनुवाद की प्रकृति को समझने के लिए हमें किसी साहित्य को ज्ञान का तटस्थ स्रोत मानने का रहस्यमयी विचार त्यागने की आवश्यकता है। कृष्ण कुमार के अनुसार किसी साहित्य को जिस सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में उपयोग किया जाना होगा, उन परिस्थितियों से उसके व्यावहारिक एवं प्रतीकात्मक स्वरूप प्रभावित होंगे (कुमार : 1992, 24)। इस प्रकार सुधारवादी आंदोलन के संदर्भ में 19वीं शताब्दी में किए गए वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद एवं अन्य पुस्तकों ने भारतीय समाज के आधुनिकीकरण की सुधारवादी इच्छा को व्यावहारिक धरातल प्रदान किया। सांकेतिक तौर पर इन अनुवादों ने भारतीय विचारकों को आध्यात्मिक और अंधविश्वासी की तरह प्रस्तुत करने के उपनिवेशवादी प्रयासों का विरोध करने की कोशिश की। बहुसांस्कृतिक संदर्भ में पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद की भूमिका पर बात करते हुए आर. के. अग्निहोत्री ने अनुवाद को शैक्षणिक पुनर्लेखन कहा है। अब यदि हम पाठ्यपुस्तकों न सिर्फ वस्तुनिष्ठ तथ्यों बल्कि कुछ विशिष्ट मूल्यों (उदाहरण के लिए आधुनिकता और तार्किकता) को मूर्त रूप देने के लिए पढ़ते हैं, तो अनुवाद शैक्षणिक पुनर्लेखन ही हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, उस समय विज्ञान और आधुनिक शिक्षा की बहस ने एक साझा सामाजिक मंच मुहैया कराया जिससे विभिन्न संस्कृतियों एवं धार्मिक पृष्ठभूमि वाले भारतीय बुद्धिजीवी साथ आए। बंगाल में रॉय और विद्यासागर से लेकर अलीगढ़, महाराष्ट्र में सैयद अहमद और जांभेकर तक, सभी ने आधुनिक विज्ञान और शिक्षा की जरूरत को पहचाना। जैसा कि इरफान हबीब और ध्रुव रैना ने कहा है कि विज्ञान ने एक तटस्थ जमीन दी जिससे भारतीय बुद्धिजीवी सामाजिक परिवर्तन का अपना दर्शन स्पष्ट कर सके और विज्ञान उनके लिए सामाजिक परिवर्तन का कारक भी बना। वास्तविक उपयोगी ज्ञान की महत्ता को प्रोत्साहित करने से के अलावा विज्ञान ने राजा राममोहन राय को हिंदू धर्म दर्शन की आलोचना करने वाले इसाई मिशनरियों को जवाब देने का हथियार उपलब्ध कराया। राय ने तर्क किया कि यह ईसाइयत नहीं है जिसने पश्चिमी सभ्यता को परिभाषित किया है, बल्कि पश्चिमी सभ्यता का विकास विज्ञान की प्रगति से हुआ है। 'वैज्ञानिक तार्किकता' की भाषा ने सुधारवादी राय और अहमद जैसे लोगों को हिंदू धर्म दर्शन और इस्लाम की पुनर्व्याख्या के लिए भाषा प्रदान की।

10.3.2 आधुनिक यूरोपीय राजनीतिक विचार का अनुवाद

आइए अब हम इस दौरान भारतीय भाषा में हुए आधुनिक यूरोपीय राजनीतिक विचार के अनुवाद के बारे में बात करें। जैसा कि पहले प्रकाश डाला जा चुका है कि सामाजिक सुधार आंदोलन और भारतीय पुर्नजागरण मात्र भारतीय पहल का परिणाम नहीं था। पश्चिमी राजनीतिक विचार का भी इन पर काफी प्रभाव पड़ा। यूरोप में, फ्रांसीसी क्रांति से राजशाही के अंत के साथ समतावादी समाज का विचार फैल चुका था। इन बड़े बदलावों से प्रभावित विचारों ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारत का रुख किया। फ्रांसीसी क्रांति को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले ज्यां जॉक रूसो के लेखन एवं क्रांति के आलोचक एंड्रमंड बर्क ने स्वतंत्रता और समानता के विचार को चारों तरफ प्रचारित करने का काम किया। सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए ये विचार भारत के लिए मूल्यवान सिद्ध हुए। बेंथम द्वारा प्रतिपादित उपयोगितावादी विचार भी प्रतिगामी सामाजिक प्रथाओं के प्रतिवाद के लिए उपयोगी सिद्ध हुए।

इससे अलग इतिहास के शिक्षक हेनरी लुई विवियन डेरोजियो से प्रेरित होकर बंगाल में हिंदू कॉलेज के छात्रों द्वारा 1830 में युवाओं का एक समूह बना। हमें याद रखना चाहिए कि पारंपरिक ज्ञान के दोहन के उद्देश्य से बने संस्कृत महाविद्यालयों के विपरीत हिंदू कॉलेज की शिक्षा को पश्चिमी शिक्षा की ओर मोड़ा गया था। डेरोजियो ने न केवल अपने विद्यार्थियों को ज्ञानोदय से बल्कि फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, भाईचारा और समानता के विचार से परिचित कराया। उन्होंने अपने विद्यार्थियों को जॉन लॉक के 'नागरिक स्वतंत्रता और नैसर्गिक अधिकार', वॉल्टेयर के 'क्षेत्र की प्रधानता, ज्ञानोदय और बेहतर चुनाव', टॉम पेन के 'स्वतंत्रता के विचारों' को पढ़ाया। हालाँकि यह बंगाल का युवा समूह कोई वास्तविक सामाजिक परिवर्तन लाने में परी तरह सफल हुआ यह कहना असंदिग्ध है। ऐसा

माना जाता है कि अधिकतर युवा रुढ़िवादी हिंदू परंपराओं की ओर मुड़ गए थे, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि सुधार का विचार जनमानस का अभिन्न अंग बन गया था इससे संबंधित खूब सारी सामग्री मूल अंग्रेजी के साहित्य के रूप में उस समय उपलब्ध थी।

इनमें से काफी सारा साहित्य हालाँकि, मात्र अंग्रेजी में शिक्षित अभिजात्यों तक ही सीमित नहीं था, 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के शुरुआती दौर में भारतीय भाषाओं में इनके अनुवाद किए गए। पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जॉन स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' का हिंदी अनुवाद 'स्वाधीनता' नाम से किया। वास्तव में मिल की किताब कॉलेज पाठ्यक्रम के तौर पर प्रस्तावित हुई। मिल के विचार को ईश्वरचंद्र विद्यासागर की पहल पर 1850 में स्थापित किए गए संस्कृत महाविद्यालय के नए पाठ्यक्रम में रखा गया।

यह समझने के लिए कि 19वीं शताब्दी में कुछ निश्चित तरह की ही पुस्तकों का अनुवाद क्यों हुआ, हमें गिडियोन टॉउरी के लक्ष्य-अभिमुखता के अनुवाद के सिद्धांत को देखने की जरूरत है। टॉउरी का यह सिद्धांत इवेन-जोऑर द्वारा दिए गए सांस्कृतिक साहित्य के अनुवाद से संबंधित विचार पर आधारित था तथा अनुवाद की प्रक्रिया पर केंद्रित था। टॉउरी के अनुसार लक्षित संस्कृति के मानदंडों के आधार पर अनुवाद निर्धारित होता है। मानदंड सामाजिक- ऐतिहासिक तथ्य या वे नियम होते हैं जिनसे अनुवाद का पैमाना निर्धारित होता है। टॉउरी ने तीन मानदंड : प्राथमिक, आरंभिक और परिचालन निर्धारित किए थे। प्राथमिक मानदंड में वे कारक सम्मिलित थे जिससे यह निर्धारित होता था कि किस तरह के पाठ का अनुवाद हो और किस भाषा इत्यादि में हो। आरंभिक मानदंड से यह निर्धारित हुआ कि कैसे अनुवादक स्रोत भाषा या पाठ और लक्षित संस्कृति के मध्य सामंजस्य रखे और परिचालन उनका अर्थ अनुवाद की प्रक्रिया के दौरान अनेक प्रकार के संयोजन विलोपन या शैलीगत परिवर्तन था

धर्म ग्रंथों, विज्ञान की पुस्तकों एवं यूरोपीय राजनीतिक विचार के अनुवाद को सामाजिक सुधारवादी आंदोलन से उत्पन्न हुए 'प्राथमिक मानदंड' के निर्देश की तरह देखा जा सकता है। जब राममोहन राय और आर. सी. दत्त ने पारंपरिक ग्रंथों और महाकाव्यों (स्रोत पाठ) की आधुनिक दुनिया (लक्षित संस्कृति) के लिए पुनर्व्याख्या किया तो 'आरंभिक मानदंड' ने काम किया। जैसा कि हमने देखा है कि 'परिचालन मानदंड' के काम करने को दत्त ने मूल पाठ के अनुवाद के घनीभूत होने की वास्तविक प्रक्रिया कहा है।

10.3.3 अनुवाद और भारतीय सभ्यता-संस्कृति के अध्ययन का प्रभाव

आप इससे पहले भारतीय सभ्यता-संस्कृति के अध्ययन से परिचित हो भारतीय ज्ञान परंपरा में हुए अनुवादों की प्रकृति के अध्ययन के लिए सूचीबद्ध कर सकते हैं। इस खंड का लक्ष्य है कि आप अनुवाद और भारतीय ज्ञान के अध्ययन की सामाजिक सुधार आंदोलन में भूमिका के प्रश्नों से अवगत हो सकें। हम यह जानते हैं कि 19वीं शताब्दी में 'इंडोलॉजी' भारत के पुनर्जागरण के साथ तुलनात्मक भाषाशास्त्रीय अध्ययन का भी भाग था। 19वीं शताब्दी के पहले भाग में भारत का ज्ञान प्राचीन भारतीय पुस्तकों पर आधारित था। 19वीं शताब्दी के उस काल में, जब विलियम जोन्स से लेकर मैक्स मूलर जैसे प्राच्यविद्याविदों ने प्राचीन भारतीय पुस्तकों की खोज की और उन्हें अंग्रेजी तथा जर्मन में अनूदित किया, रेमंड वाब ने 'प्राच्यवादी पुनर्जागरण' कहा था। इस अनुवाद से उस भारत का प्रस्तुतिकरण हुआ जिसकी पारलौकिकता दुरुह बनी हुई थी, जहां के लोग अकर्मण्य और शासक निरंकुश थे। इस तरह के चित्रण से अप्रत्यक्ष रूप से औपनिवेशिक शासन को सभ्यता लाने के लक्ष्य के रूप में न्यायोचित बताया गया। हिंदू धर्म दर्शन पर अध्ययन के द्वारा भी भारत के प्रतीकात्मक भाव को 'विवेकी' पश्चिमी सभ्यता के विरुद्ध दर्शाया गया। (इंडोलॉजी पर लिखे खंड 2, इकाई 5 में इसे देखा जा सकता है)। चूंकि अनुवाद को भारतीय सभ्यता-संस्कृति के अध्ययन के एक भाग के रूप में इस प्रकार कार्यान्वित किया गया था कि अंततः भारत की छवि सभ्यता की श्रेणीबद्धता में नीचे दिखाई जा सके और तब भारतीयों ने इस तरह के अनुवाद का प्रतिरोध भी किया था।

10.4 अनुवाद और प्रतिरोध की राजनीति

आइए अब हम इस बात पर विचार करें कि कैसे अनुवाद प्रतिरोध की राजनीति से जुड़ा हुआ था। लेकिन, प्रतिरोध

की प्रकृति को समझने के लिए हमें सुधारवादी आंदोलन तथा उपनिवेश विरोधी आंदोलन के शुरुआती चरण से जुड़ी बहसों पर जाना होगा, जो 19वीं शताब्दी में किए गए अनुवादों में सम्मिलित थी। पार्थ चटर्जी द्वारा उपनिवेश विरोधी राष्ट्रवादी आंदोलन के दो प्रभाव-क्षेत्रों की पहचान किए जाने के समान ही (देखें 12.2), तनिका सरकार ने भी भू-भाग के अखंड, स्वायत्तशासी राष्ट्रवादी संरचना के बारे में अविजित क्षेत्र के रूप में वर्णन किया है। तनिका सरकार के अनुसार इस भू-भाग के लोगों ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद के रूप में थोपी गई आधुनिकता का प्रभावी प्रतिरोध किया। एडवर्ड सईद ने प्राच्यवाद को इसलिए आलोचना की थी क्योंकि यूरोपीय उपनिवेशवादी प्राच्य को यूरो केंद्रित मानदंडों से देखते थे। ठीक इसी प्रकार राष्ट्रवादियों के लिए स्व और अन्य के बीच भेद करना बेहद जरूरी था तथा घरेलू वातावरण ने इस वैकल्पिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान की, जिसका प्रबंध औपनिवेशिक शासन द्वारा किया गया था। इस प्रकार घर, परिवार और वैवाहिक संबंध सभी सुधारवादी आंदोलन के केंद्र में थे। बाहरी तौर पर यदि देश बाहरी राजनीतिक राष्ट्र के अधीन था तो सुधारवादी आंदोलन का प्रयास एक आंतरिक अदृश्य राष्ट्र को पुनर्जीवित करने की थी ताकि देश के मूल निवासी अपना प्रतिनिधित्व करने वाले संस्थान का दावा कर सकें, या पार्थ चटर्जी के अनुसार, मूल निवासी अपनी कल्पनाओं में आजादी का दावा कर सकें।

इसे इस संदर्भ में समझने की जरूरत है कि हम प्रतिरोध के रूप में अनुवाद को चिन्हित कर सकें। थियो हरमंस के अनुसार 'अनुवाद को सांस्कृतिक स्व-संदर्भ या स्व-परिभाषा के रूप में पेश किया जा सकता है' (फ्रांस में 2001, पृष्ठ 14)। इसी परिपाटी पर पॉल सेंट पियरे ने राष्ट्र निर्माण में अनुवाद की भूमिका को रेखांकित किया है। इसके लिए पियरे ने 'विदेशी प्रभाव के विरोध के रूप को प्रदर्शित करके, विदेशी विचारों को समाहित करके या उसका राष्ट्रीयकरण करके, जिसमें विभिन्नताओं को हर संभव घटाकर प्रदर्शित करके या अमूमन प्रभावशाली विदेशी विचारों की नकल करके, अनुवाद के अस्तित्व को दूसरों के बरक्स स्थापित करने की कोशिश की है' (दास के संदर्भ से: 2005, पृष्ठ 79)। भारत और इसकी परंपराओं के शासकीय स्वरूप का प्रतिरोध करने में चुने हुए ग्रंथों एवं साहित्य के अनुवाद ने काफी मदद की। इस प्रकार अनुवाद एक तरह से सामाजिक व्यवहार का एक हिस्सा बना जो 'सांस्कृतिक आग्रजन को नियंत्रित करने के लिए उसके अनुवाद पर प्रतिबंध लगाने या उसमें संशोधन करने के रूप में कार्य कर रहा था' (वही, 79-80)। इस प्रकार विज्ञान एवं राजनीतिक दर्शनशास्त्र के विदेशी साहित्य को भारतीय भाषाओं में अनूदित करते हुए उनके विदेशीपन को भारतीय संस्कृति के अनुरूप ढाला गया।

औपनिवेशिक संदर्भ पर लिखते हुए पियरे ने रेखांकित किया है कि कैसे 'अनूदित भाषा को लक्ष्य भाषा के अनुरूप ढालने पर जोर दिया जाता था।' पियरे इसके लिए विसेंट राफेल के हवाले से कहते हैं कि फिलिपिंस के विद्वान टैगालॉग्स कैसे स्पेन के विद्वानों द्वारा भाषाओं को उच्चता के क्रम में विभाजित करने के प्रयास का विरोध करने के लिए स्पेन के विभिन्न विद्वानों के बीच के मतभेदों का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार अनुवाद 'दूसरे साहित्य को दूसरे रूप में ही' संरक्षित कर सकता है (86)। इसे गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक के विश्लेषण से जोड़कर देखा जा सकता है। स्पीवाक ने बताया है कि कैसे जब एक उपनगरीय भाषा को किसी महानगरीय भाषा में अनूदित किया जाता है तो उसके विदेशीपन को बरकरार रखकर कैसे उसकी विशिष्ट पहचान को संरक्षित किया जाता है (स्पीवाक के प्रतिरोध के सिद्धांत के बारे में और जानने के लिए 12.3 देखें)।

इससे पहले हम जान चुके हैं कि राममोहन राय ने संस्कृत साहित्य को विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित किया था। इस प्रकार सुधारवादी आंदोलन के लिए अनुवाद की भाषा बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि हिंदी या बांग्ला भाषा में अनुवाद करने की अपेक्षा अंग्रेजी में अनुवाद करना एकदम भिन्न लक्ष्य समूह की तरफ इशारा करता है। इस प्रकार जब संस्कृत जैसी सशक्त संस्कृति वाली भाषा से भारत की अन्य भाषाओं जैसे, हिंदी, बांग्ला इत्यादि में अनुवाद किया गया तो अनुवाद ने स्वतः ब्राह्मणवादी शासनवृत्ति का विरोध करने के रास्ते तला । लिए। स्रोत भाषा, लक्ष्य भाषा के अनुरूप ढली तथा उसने लोगों की आवश्यकता के अनुरूप रूप ग्रहण किया, या जैसा कि विजय कुमार दास कहते हैं कि अनूदित साहित्य ने समाज की पुनःस्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस अनूदित साहित्य के प्रति एक दृष्टिकोण यह भी है कि अनूदित साहित्य में हमेशा एक निश्चित तरह का सम्मिश्रण दिखाई देता है। हरभंस के अनुसार, अनूदित साहित्य से मूल साहित्य की संस्कृति एवं भाषाशिल्प हमेशा झलकते रहते हैं। इस प्रकार एक अनूदित साहित्य की विषय सामग्री हमेशा एक असंबद्ध सम्मिश्रण लिए हुए रहती है। तो क्या हम एक तरह से अनूदित साहित्य के इस खिचड़ीपन को औपनिवेशिक भाषा में राष्ट्र की अभिव्यक्ति

की सुविधा के रूप में देख सकते हैं? या आप इस खिचड़ीपन को किसी एक विशेष संस्कृति की अभिव्यक्ति की बाधा के रूप में देखते हैं? संस्कृत से अंग्रेजी में अनूदित साहित्य के संदर्भ में बात करें तो सवाल उठता है कि क्या अनूदित साहित्य ने मूल साहित्य के विदेशीपन को, उसके मौलिक अभिव्यक्ति को बरकरार रखा और इस प्रकार एकदम अलग सांस्कृतिक पहचान निर्मित एवं स्थापित करने में योगदान दिया?

राजा राममोहन राय द्वारा धार्मिक ग्रंथों के अनुवादों को मूल एवं अनूदित साहित्य के प्रति भारतीय प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, हालांकि उसे प्राच्य विद्या में हस्तक्षेप तथा एकेश्वरवादी स्वरूप में देखा गया था। अगर वैदिक सभ्यता के विभिन्न चरणों को चिह्नित करने के लिए भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन को विभिन्न सभ्यताओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन के रूप में देखा जाए तो राजा राममोहन राय ने भी तुलनात्मक रूप से ईसाइयत के खिलाफ हिंदू धर्म का ही बचाव किया। उनके द्वारा किए गए उपनिषदों के अनुवाद आधिकारिक हिंदू धर्म की पुनःस्थापना के लिए किए गए कार्य का ही हिस्सा थे। राय के अनुसार, हिंदू धर्म के सारे प्रतिगामी सामाजिक व्यवहार, परंपराएं एवं मूर्तिपूजा आदि वास्तविक हिंदू धर्म का अनिवार्य हिस्सा नहीं थे, बल्कि समय के साथ हिंदू धर्म में बहुत गिरावट आई, जैसा कि ईसाई धर्म में भी बाद में क्रूसीफाई करना, चमत्कार, क्षमा मांगने से पाप से छुटकारा आदि जैसी चीजें जुड़ गईं। जैसा कि डेविड कॉफपी ने बताया है कि भारत में सामाजिक सुधार आंदोलन सांस्कृतिक हमलों से प्रतिरक्षा के रूप में हुआ। उसे औपनिवेशिक शासन द्वारा भारत को पिछड़ा हुआ घोषित करने की नीति के विरोध में प्रतिक्रिया व्यक्त करनी थी। इस सामाजिक सुधार आंदोलन को अपनी परंपराएं पुनर्जीवित करनी थीं, जो आंतरिक परिक्षेत्र के अंतर्गत थीं तथा आंतरिक परिवर्तन की दिशा में कार्य करना था।

इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि परिवर्तन की यह प्रक्रिया परंपराओं को आधुनिक दुनिया एवं समाज के अनुरूप ढालने की जरूरत के विपरीत संचालित थी साथ ही यह भारत को आधुनिक प्रगतिगामी यूरोपीय देशों के अनुरूप ढालने की आवश्यकता के मद्देनजर हो रही थीं। आर. सी. दत्त द्वारा रामायण का उसकी धर्मनिष्ठा एवं कर्तव्यपरायणता के साथ किया गया अनुवाद न सिर्फ आधुनिक पाठक के लिए मूल रामायण की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करता है, बल्कि राम को न्यायसंगत राजा के रूप में की गई प्रस्तुति के जरिये निरंकुश तानाशाही के प्राचीन विचार का प्रतिरोध भी करता है।

आइये अब देरीदा द्वारा की गई मौलिकता या मूल के विचारा की आलोचना पर विचार करते हैं। इस पर हमने दत्त के अनुवाद के संदर्भ में काफी संक्षेप में बात की थी। देरीदा के अनुसार, कुछ भी मूल नहीं है या मूल स्रोत नहीं है तथा जो कुछ वास्तविकता की भांति या उसके समादृश्य प्रस्तुत किया जाता है, वह हमेशा मात्र एक प्रस्तुति ही रहती है। इस प्रकार राय एवं दत्त द्वारा किए गए अनुवाद यही बताते हैं कि भारत का प्राच्यविदों द्वारा किया गया प्रस्तुतिकरण हमेशा मात्र एक प्रस्तुति ही थी और वह कभी वास्तविकता नहीं थी।

10.5 सारांश

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट हो चुका है कि 19वीं शताब्दी में उपनिवेशकाल के विस्तार के साथ विभिन्न प्रकार के अनुवाद हुए। इन अनुवादों के प्रेरक तत्व भिन्न थे। सिर्फ भारतीय ग्रंथ ही अंग्रेजी, जर्मन एवं अन्य भाषाओं में अनूदित नहीं हुए बल्कि अंग्रेजी एवं यूरोपीय दर्शनशास्त्र पर लिखे अन्य भाषाओं के साहित्य का भी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। इसाई मिशनरियों एवं प्राच्यविदों द्वारा भारतीय समाज की अपभ्रष्ट प्रस्तुतिकरण के खिलाफ प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने हिंदू धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद को हथियार की तरह इस्तेमाल किया तथा उन्हें तर्कसंगत आस्था के रूप में पुनर्व्याख्यायित किया। धार्मिक पुस्तकों के अलावा, यूरोपीय राजनीतिक दर्शनशास्त्र एवं पश्चिम के विज्ञान से संबंधित साहित्य का भी अनुवाद किया गया। इस प्रकार 19वीं शताब्दी में अनुवाद का भारतीय समाज में दो तरीकों से परिवर्तन लाने के लिए प्रयोग किया गया। पहला, परंपराओं की पुनर्व्याख्या के लिए तथा दूसरा चुने हुए पश्चिमी विचारों के आगमन एवं उन्हें भारतीय जनमानस के अनुरूप ढालकर उपयोग के लिए।

10.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. सामाजिक सुधार आंदोलन को लेकर की गई प्रमुख चर्चाओं को सूचीबद्ध करें।
2. मूल ग्रंथों के अनुवाद एवं उनकी पुनर्व्याख्या का संबंध किस प्रकार इसके उत्पादन की परिस्थिति एवं उसकी स्वीकृति से है?
3. व्याख्या करें कि अनुवाद और इसके उत्पादन तथा प्रसार के बीच क्या संबंध हैं?
4. व्याख्या करें कि अनुवाद और इसके उत्पादन तथा प्रसार के बीच क्या संबंध हैं?

10.7 शब्दावली

- Kaliyug** : प्राचीन हिंदू परंपरा में समय चक्र की परिकल्पना में बताए गए चार युगों में से एक कलयुग है। ऐसा माना गया है कि कलयुग में धर्म के मूल्यों की स्थापना तथा उन पर आचरण की स्थिति अन्य युगों की तुलना में अधिक खराब होती है। सत्य, त्रेता एवं द्वापर अन्य तीन युग हैं।
- Polysystem** : इवेन-जोऑर के अनुसार पॉलीसिस्टम सिद्धांत किसी विशेष सभ्यता-संस्कृति में साहित्यिक एवं अति बौद्धिक प्रणाली के बीच के संबंध को दर्शाता है, जिसमें हाशिये के एवं मुख्य धारा के वैधानिक सभी तरह के लेखन का समावेश रहता है।
- Unitarianism** : ऐसा धार्मिक विश्वास जिसमें सिर्फ एक ही ईश्वर की कल्पना की जाती है, जिसमें सब कुछ समाहित है।
- Utilitarianism** : इंग्लैंड में 19वीं शताब्दी में जेरेमी बेंथम द्वारा पहली बार इस राजनीतिक दर्शन का प्रतिपादन किया गया। इस दार्शनिक राजनीतिक विचारधारा के अनुसार सिर्फ वही कार्य मूल्यवान हैं, जिसकी उपयोगिता सर्वाधिक लोगों के लिए हो तथा जो उनकी खुशियों को बढ़ाने वाला हो। इस दार्शनिक राजनीतिक विचारधारा में चूंकि उपयोगिता पर विशेष बल दिया गया है, इसलिए भारत में सार्थक बदलाव लाने के लिए इसने समाज सुधारकों को बहुत प्रभावित किया।

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Chatterjee, P. (1992). *The Nation and its Fragments*. Oxford University: New Delhi.
- Das, K. B. (2005). *A Handbook of Translation Studies*. Atlantic Publishers: New Delhi.
- France, P. (2001). *Oxford Dictionary to Translation Studies*. Oxford University Press: New Delhi.
- Gentzler, Edwin. (1993) *Contemporary Translation Theories*. Routledge: London.
- Kopf, D. (1996). *The Brahmo samaj and the Shaping of the Modern Indian Mind*. Atlantic: New Delhi.
- Kotnala, M. C. (1975) *Raja Ram Maohan Roy and Indian Awakening*, Gitanjali Prakashan: New Delhi.
- Kumar, K. (1992). *What is Worth Teaching?* Orient longman: Hyderabad.
- Niranjana, T. (1992). *Siting Translatio : History, Post structuralism and the Colonial Context*, University of California Press: California.

- Prashad, V. (2001). *Untouchable freedom: Social History of a Dalit Community*. Oxford University Press: New Delhi.
- Pruthi, R. K. (2004). *The Classical Age*. Discovery Publishing House: New Delhi.
- Sarkar, S. (1997). *Writing Social History*. Oxford University Press: New Delhi.
- Shanta Ramakrishna (eds.) (2007). *Translation and Multilingualism: Postcolonial contexts*. Pencraft International, New Delhi.
- Zelliott, E. (1992). *From Untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar Movement*, Foundation: New Delhi (2005).
- Tangri, S. S. (1961). 'Intellectuals and Society in Nineteenth Century India' in *Comperative Studies in society and History*, Vol. 3, No. 4 (Jul.), pp. 368-394. <http://www.jstor.org/stable/177660>.
- Tharu, S. and K. Lalita (ed.) (1991). *Women Writing in India: 600 B.C. to the Early Twentirth Century*. Oxford Unicersity Press: New Delhi.
- Habib, S. Irfan. (1989). 'Copernicus, Columbus, Colonialism and the Role of Science in nineteenth Century India`s Social Scientist, Vol. 17, No. ¾ (Mar.), pp. 51-66. <http://www.jstor.org/stable/3517360>.
- Kumar, Deepak. (1996). 'The "Cultural" of Science and Colonial Culture, India 1820-1920' in the *British Journal for the History of Science*, Vol. 29, No. 2 (Jun.) pp. 195-209. <http://www.jstor.org/stable/4027833>.